सितंबर
2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 अंक - 9 । प्रति - ₹ 25 । ₹ 300 वार्षिक

5 ▸ उपभोग नहीं, संरक्षण बने विकास का आधार
29 ▸ संयम, सदाचार एवं चरित्र निर्माण
16 ▸ योग—स्वस्थ जीवन का आधार
60 ▸ भव्य भारत के चार स्तंभ—ज्ञान, शौर्य उद्योग एवं सेवा

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

गायत्री द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्ति

कुबुद्धि का दूसरा लक्षण 'अदूरदर्शिता' है। आज का, इसी समय का, तुरंत का, लाभ देखना और भविष्य के परिणामों पर विचार न करना इसे अदूरदर्शिता कहते हैं।इसके चँगुल में फँसकर अनेक व्यक्ति विविध-विधि कष्ट भोगते हैं।

स्वास्थ्य को नष्ट करने में अदूरदर्शिता सबसे बड़ा कारण है। इंद्रियों के भोग भोगने में लोग इतने निमग्न हो जाते हैं कि यह नहीं देखते कि आगे इसका परिणाम क्या होगा। जीभ के स्वाद में पेट की मर्यादा से अधिक भोजन किया जा सकता है। मसाले और चीनी मिलाकर अनुपयुक्त पदार्थों को पेट में ठूँसा जाता है। जब तक पहला भोजन पचने नहीं पाया कि नया बोझ पेट पर लाद दिया। इन अत्याचारों से पेट की पाचनशक्ति खराब हो जाती है, कब्ज रहने लगता है, भूख लगती नहीं, दस्त साफ नहीं होता, आँतों में मल इकट्ठा होकर सड़ने लगता है। उस सड़न से उत्पन्न हुआ विष विविध प्रकार के रोग उत्पन्न करता है।

(अखण्ड ज्योति, सितंबर - 1951, पृष्ठ - 3)

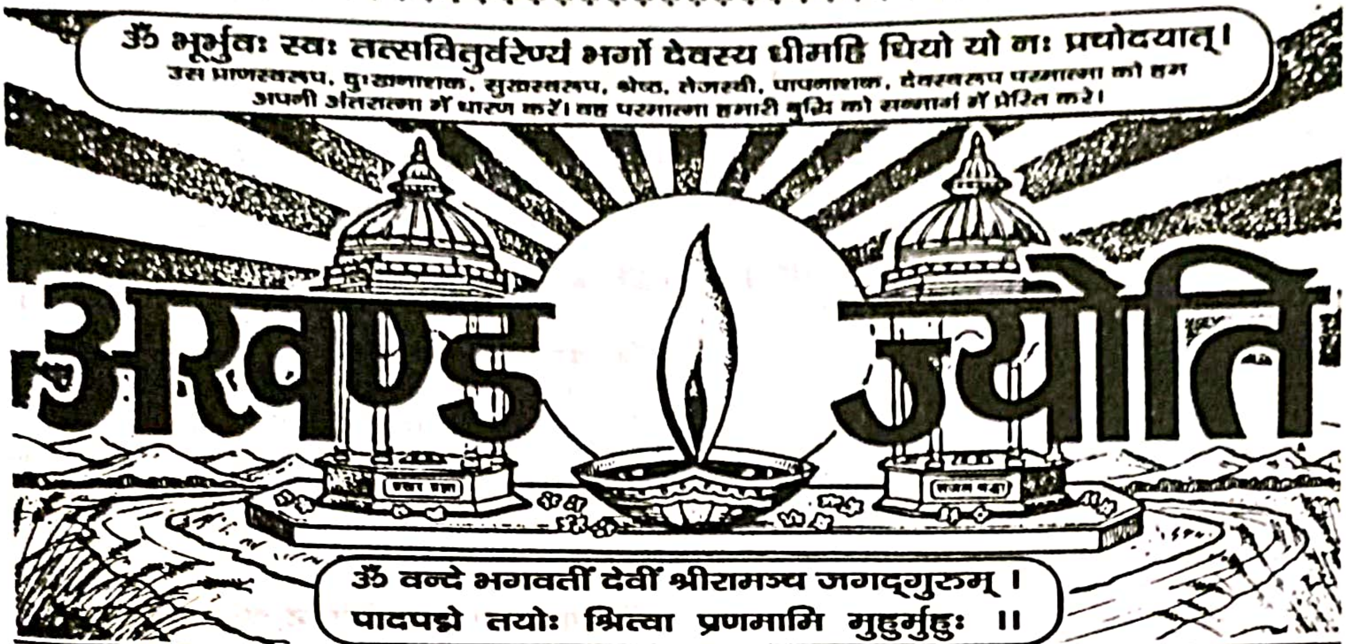

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मेसेज करें)

वर्ष	:	90
अंक	:	09
सितंबर	:	2026
भाद्रपद-आश्विन	:	2083
प्रकाशन तिथि	:	01.08.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

ऋषियुग्म की सूक्ष्मसाधना

(क्रमशः)

ऋषियुग्म की सूक्ष्मसाधना अब युगल स्वरूप में आरंभ होनी थी। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव तो पहले ही चेतना की उच्चतम कक्षा में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अब वंदनीया माताजी ने उनके पास, उनके साथ रहकर साधनारत होने का निर्णय ले लिया था। वे बीच-बीच में, जब-तब अपने मंतव्य को प्रकट भी कर दिया करती थीं। जब कभी वे ऐसा कहतीं, तो हम सब उनसे अनुगत आग्रह करने लगते—'माताजी आप ऐसा न करिएगा। पिता के बिना तो हम सब जैसे-तैसे जी लिए, पर माता के बिना कैसे जिएँगे ?' ऐसी बातों को सुनकर वे बात बदल दिया करतीं। सब जानते थे, कई अवसरों पर इसे सबने अनुभव भी किया था कि गुरुजी-माताजी एक प्राण-दो शरीर हैं। गुरुदेव क्या गए थे, माताजी के प्राण भी उनके साथ विदा हो गए थे। अब तो बस उनका शरीर था, जिसे वे जैसे-तैसे अपने संकल्प बल से सँभाले रखतीं। उन्होंने अपने सामने गुरुदेव के द्वारा किए गए वेदभाष्य को फिर से संपादित कराया। घर-घर में देवस्थापना-वेदस्थापना हुई। अश्वमेध का अलौकिक अभियान तीव्र वेग से गतिमान हुआ। अब ऐसा लगने लगा, जैसे उन्होंने अपने सभी निश्चय संपूर्ण कर लिए हों। चित्रकूट अश्वमेध के समय वे उस प्रत्येक स्थान पर गईं, जहाँ कभी माता सीता पहुँची थीं। ऐसा लगा, जैसे कि वे पुरानी स्मृतियों को पुनर्जीवित कर रही हों। उस समय उनको पता नहीं क्या-क्या याद आया ? जो दिखाई दिया, वह बस, इतना था कि उनकी आँखों से आँसू छलके, नयनों से नीर बहा, श्रीराम की याद में भीगकर वे श्रीराम के पास पहुँचने के लिए आतुर हो उठीं। प्राणों का अंतिम सूत्र टूटने की ओर अग्रसर होने से शरीर शिथिल होने लगा। आखिर वर्ष 1994 के सितंबर महीने की 19 तारीख को उन्होंने सूक्ष्मसाधना के लिए स्थूलशरीर का परित्याग कर दिया। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- ऋषियुग्म की सूक्ष्मसाधना — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  उपभोग नहीं, संरक्षण बने विकास का आधार — 5
- गायत्री और सावित्री : आत्मशक्ति और जीवनशक्ति का अद्वैत — 8
- देवर्षि नारद की पृथ्वी-यात्रा — 10
- विचारों का महत्त्व और आत्मविकास — 12
- गायत्री के सिद्ध साधक — 13
- योग—स्वस्थ जीवन का आधार — 16
- जीवन को उद्देश्यपूर्ण जिएँ — 18
- **पर्व विशेष—श्रीकृष्ण जन्माष्टमी**
  पूर्णपुरुष के जीवन से प्रेरणा लेने का पर्व — 19
- जीवन बने उत्सव — 22
- प्रेतात्मा के साथ संवाद — 23
- प्रतिकूलता को बनाएँ, जीवन-उत्कर्ष की सीढ़ी — 25
- स्मरण शक्ति — 26
- **युग ज्योति : वंदनीया माताजी जन्मशताब्दी लेखमाला—1**
  महान तपस्वी नारियों की परंपरा की ध्वजवाहिका वंदनीया माताजी — 28
- अटल है ईश विधान — 31
- पक्षियों से सीखें, प्रकृति के संग रहना — 35
- **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—8**
  सज्जनता के वातावरण का निर्माण — 37
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—210**
  राष्ट्र-निर्माण के तत्त्वों पर शोध — 42
- **युगगीता—316**
  अधर्म को धर्म मानती है तामसी बुद्धि — 46
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  पात्रता की परीक्षा (पूर्वार्द्ध) — 48
- **विश्वविद्यालय परिसर से—255**
  मानवीय उत्थान का आधार है विश्वविद्यालय — 55
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  भव्य भारत के चार स्तंभ—ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा — 60
- **अपनों से अपनी बात**
  सतयुग की वापसी — 63
- शिष्य का कल्याण (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

॥ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

संयमित उपभोग ही संरक्षण और स्थायी विकास का आधार है।

सितंबर-अक्टूबर, 2026 के पर्व-त्योहार

बुधवार	02 सितंबर	हलषष्ठी
शुक्रवार	04 सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
सोमवार	07 सितंबर	अजा एकादशी
गुरुवार	10 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या
सोमवार	14 सितंबर	श्री गणेश चतुर्थी/ हरतालिका व्रत
मंगलवार	15 सितंबर	ऋषि पंचमी
गुरुवार	17 सितंबर	विश्वकर्मा जयंती
मंगलवार	22 सितंबर	जलझूलनी एकादशी
बुधवार	23 सितंबर	वामन जयंती
शुक्रवार	25 सितंबर	अनंत चतुर्दशी
शनिवार	26 सितंबर	परमवंदनीया माताजी महाप्रयाण दिवस/महालयारंभ
बुधवार	30 सितंबर	परमवंदनीया माताजी जयंती
शुक्रवार	02 अक्टूबर	गांधी जयंती/ शास्त्री जयंती
रविवार	04 अक्टूबर	मातृ नवमी
मंगलवार	06 अक्टूबर	इंदिरा एकादशी
गुरुवार	08 अक्टूबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती
शनिवार	10 अक्टूबर	पितृमोक्ष अमावस्या
रविवार	11 अक्टूबर	नवरात्रारंभ
बुधवार	21 अक्टूबर	विजयादशमी
गुरुवार	22 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
रविवार	25 अक्टूबर	शरद् पूर्णिमा
सोमवार	26 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती
गुरुवार	29 अक्टूबर	करवा चौथ

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

विशिष्ट सामयिक चिंतन

उपभोग नहीं, संरक्षण बने विकास का आधार

हिमालय क्षेत्र के राज्यों में बरसात के मौसम में प्राकृतिक आपदाओं का कहर विगत कुछ वर्षों से कुछ अधिक ही देखने में आ रहा है, जो भयभीत करने वाला है और साथ ही चिंता का विषय भी है।

इसका कारण मुख्यत: जलवायु एवं मौसम परिवर्तन को माना जा रहा है; जबकि वास्तविकता यह है कि इसमें हम सब भी भागीदार हैं और इसके प्रभाव को कम करने के लिए हमें सामूहिक जिम्मेदारी लेते हुए अपनी नीतिगत एवं व्यावहारिक भूल-चूकों में सुधार करना होगा।

मालूम हो कि हिमालय अभी युवा और नाजुक पर्वतमाला है। जिसकी औसत भार वहन-क्षमता 60 से 80 टन प्रतिहेक्टेयर के बीच है, अर्थात यहाँ का भूगोल हिमालय से निस्सृत हिमनदियों के प्राकृतिक बहाव और ढलानों पर बसी पारंपरिक बस्तियों को तो सह सकता है, लेकिन चौड़ी सड़कों, बहुमंजिला भवनों-होटलों, सुरंगों और बड़े बाँध जैसे भारी निर्माण इस प्राकृतिक संतुलन पर भारी पड़ जाते हैं।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्था, रुड़की के वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार पर्वतीय ढलानों की सुरक्षित ढाल 30 डिगरी से कम होनी चाहिए, जबकि आज की सड़कें और हाइड्रो प्रोजेक्ट 45 डिगरी तक की ढलानों पर बनाए जा रहे हैं। इसी तरह हिमालयी क्षेत्र की नाजुक भू-गर्भीय संरचना प्रतिकिलोमीटर 65 से 70 परिवारों का स्थायी दबाव सह सकती है; जबकि आज हिमालयी राज्यों के कई पहाड़ी शहरों व कस्बों में यह दबाव 3 से 4 गुना बढ़ चुका है।

यह सब कुछ तब हो रहा है, जब वैज्ञानिक आकलन के अनुसार पर्वतीय राज्यों के लगभग 65 से 70 प्रतिशत क्षेत्र भू-स्खलन संभावित जोन के अंतर्गत आते हैं। मालूम हो कि अँगरेजों के समय में पहाड़ों पर निर्माण करते समय पहले पहाड़ों की मजबूती, भूकंपरोधी निर्माण और सुरक्षित दूरी जैसे पहलुओं पर ध्यान दिया जाता था। इसी का परिणाम है कि उनके समय में निर्मित कई ऐतिहासिक भवन और रेलमार्ग आज भी अक्षत खड़े हैं; जबकि इसके विपरीत हाल की फोरलेन परियोजनाएँ या नदी किनारे बनी सड़कें कुछ ही वर्षों में ढह रही हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालयी राज्यों की त्रासदियों का वास्तविक कारण मौसम नहीं, बल्कि विकास का यह मॉडल है, जिसने प्रकृति की चुनौतियों को अनदेखा कर रखा है।

जलवायु-परिवर्तन के दुष्प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता है, लेकिन यह स्थानीय अराजकता और अव्यवस्थित विकास की जिम्मेदारी से बचने की ढाल नहीं हो सकता है और यदि संरक्षणपूर्ण विकास के मॉडल को शीघ्र ही नहीं अपनाया गया, तो हिमालयी क्षेत्रों में आपदाएँ और विकराल रूप लेती रहेंगी, जिन्हें फिर प्राकृतिक आपदा से अधिक मानवनिर्मित आपदा कहना उचित होगा।

विशेषज्ञों के अनुसार नदियों व गदेरों के किनारे अतिक्रमण, बिना सम्यक मूल्यांकन के सड़कें और इमारतें बनाना और पहाड़ की स्थिरता जाँचे बिना निर्माण करना—आपदा को निमंत्रण देने जैसा है। घटना घट जाने के बाद, फिर इसे जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कहना अपनी जिम्मेदारियों से भागने के समान है।

इसके साथ ही सड़कों के निर्माण के नाम पर हजारों टन मलबा सीधे नदियों व ढलानों पर डाला जा रहा है और हजारों पेड़ काटे जा रहे हैं। हिमालयी

राज्यों पर डाला जा रहा यह बोझ उनकी भू-गर्भीय सहनशीलता से कई गुना अधिक है।

परिणामस्वरूप बरसात के दिनों में आएदिन भू-स्खलन और फ्लैश फ्लड जैसी आपदाएँ जीवन को अस्त-व्यस्त कर रही हैं। विशेषज्ञों की राय में अव्यवस्थित विकास पहाड़ों के लिए सबसे बड़ी आपदा है।

जब हम प्राकृतिक जलधाराओं, पहाड़ी ढलानों और तटीय क्षेत्रों को बे-तरतीब निर्माण से बाधित कर देते हैं तो हम स्वयं आपदा की नींव डालते हैं। ऐसे में मौसम बदलता रहेगा, लेकिन यदि हमने नदियों और गदेरों की जमीन पर कब्जा करना बंद नहीं किया तो हर बारिश विनाश लेकर आएगी।

विशेषज्ञों की राय में टिकाऊ विकास के अंतर्गत हमें स्थानीय भूगोल और पारिस्थितिकी तंत्र को ध्यान में रखकर योजनाएँ बनानी होंगी। विश्वभर में किए जा रहे कई प्रयोग यह स्पष्ट करते हैं कि जब विकास प्रकृति के अनुरूप किया जाता है तो आपदा की मार काफी कम हो जाती है।

जापान में समुद्र के किनारे लगाए गए सघन हरित पट्टे सुनामी और चक्रवात की पहली मार को रोकते हैं। नीदरलैंड ने नदियों की बाढ़ को रोकने के लिए नदियों के किनारे 'रूम फॉर दि रिवर' अर्थात नदियों के लिए जगह की नीति अपनाई हुई है, जिसमें बाढ़ की स्थिति में नदियों के प्राकृतिक बहाव को बाधित करने के बजाय उसे फैलने की जगह दी जाती है।

इसी तरह लंदन से गुजरती हुई थेम्स नदी प्रायः आस-पास के क्षेत्रों को बाढ़ की चपेट में नहीं लेती, क्योंकि ब्रिटेन सरकार ने इसको रोकने के लिए अत्याधुनिक बाढ़ सुरक्षा ढाँचा, फ्लड डिफेंस सिस्टम अपनाया हुआ है।

भारत में केरल का मियावाकी जंगल मॉडल शहरी क्षेत्रों में हरित संतुलन का अच्छा उदाहरण है। ऐसे ही हिमालयी प्रांतों के कुछ गाँव, सामुदायिक पहल से पुराने जलस्रोत पुनर्जीवित कर बाढ़ और सूखे दोनों की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं; जबकि व्यापक स्तर पर इस संदर्भ में लापरवाही अपनी चरम सीमा पर है। अधिकांशतः यहाँ नदियों और गदेरों की जमीन पर अतिक्रमण कर इमारतें बनाई जा रही हैं।

सड़कें सीधे जलधाराओं में धसाई जा रही हैं और पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन महज एक औपचारिकता बनकर रह गया है। परिणामस्वरूप मामूली बारिश भी शहरों में तालाब जैसी स्थिति पैदा कर जाती है और पहाड़ों पर सड़कों का ढहना सामान्य क्रम हो गया है तथा असंतुलित एवं अव्यवस्थित विकास हिमालयी क्षेत्रों में बार-बार तबाही का कारण बन रहा है।

इसके साथ पहाड़ों में अनियोजित निर्माण से स्थिति चिंताजनक बन चुकी है। पहाड़ों की ढलानों पर शहरों के भारी विस्तार के साथ भारी भवन-सामग्री का प्रवेश हुआ है। विशेषज्ञों के अनुसार पहले पारंपरिक भवन औसतन डेढ़ से दो टन का दबाव डालते थे, लेकिन अब आधुनिक आरसीसी बिल्डिंग दस से बीस टन भार जमीन पर डाल रही हैं। परिणामस्वरूप पहाड़ों के ढलानों पर दबाव व तनाव बढ़ रहा है।

ऐसे में बारिश के समय भू-स्खलन की चिंताजनक स्थिति बनती है और भूकंप के समय यहाँ तबाही की कल्पना रोंगटे खड़े करने वाली हो जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार पहाड़ों की पारंपरिक इमारतें ही इस संकट का समाधान हैं। विशेषज्ञों के मत में हमें सतत विकास के मानदंडों को अपनाना होगा, जिसमें प्रकृति की शक्ति को चुनौती देने के बजाय उसके स्थान पर सह-अस्तित्व के भाव के साथ रहा जाता है।

हमें पहाड़ों के भार सहन-क्षमता को ध्यान में रखते हुए भवनों एवं शहरों की बसावट तय करनी

होगी और सड़क, बाँध, टनल, फोरलेन प्रोजेक्ट जैसी आधारभूत संरचना में भू-गर्भीय और पारिस्थितिकीय स्थिरता का ध्यान रखना होगा। इसके साथ ही जलस्रोतों के पुनर्जीवन और प्राकृतिक जल निकासी-मार्ग को सुनिश्चित करना होगा। भवन-निर्माण की पारंपरिक भूकंपरोधी शैली को प्रोत्साहित करना होगा। सतत विकास के प्रभावी उदाहरणों से मिल रही सीख को अपनाना होगा और स्थानीय समुदाय की भागीदारी के साथ एक टिकाऊ विकास की रूपरेखा को अमली जामा पहनाना होगा। तभी हमारा विकास सुरक्षित होगा व खुशहाली को सुनिश्चित करेगा। ❑

सेवकराम विदेश यात्रा पर निकलने लगे तो अपनी ईश्वरपरायण पत्नी से पूछने लगे—''मेरी अनुपस्थिति में तुम्हें भोजन इत्यादि की दिक्कत तो नहीं आएगी ? तुम कहो तो तुम्हारे लिए खाने-पीने का सामान रख जाऊँ ? कितना रख जाना उचित होगा ?''

उनकी पत्नी हँसकर बोली—''जितनी मेरी आयु हो, उतना रख जाइए ?''

सेवकराम बोले—''तुम्हारी आयु मैं कैसे जान सकता हूँ ?''

उनकी पत्नी बोली—''तो जो मेरी आयु जानते हैं, उसी ईश्वर पर आप मेरी रोटी-पानी का इंतजाम भी छोड़ दीजिए ?'' उनके पति उनकी ईश्वर-आस्था पर अत्यंत मुग्ध होकर चले गए।

उनके जाने के बाद उनकी पड़ोसन ने उनकी पत्नी से पूछा—''बेटी! तुम्हारे पति तुम्हारे लिए क्या व्यवस्था कर गए हैं ?''

सेवकराम की पत्नी बोली—''माँ! मेरे पति तो खाना खाने वाले थे, खाना देने वाला तो कण-कण में बैठा है। मेरी व्यवस्था तो अब भी वही कर लेगा।''

गायत्री और सावित्री : आत्मशक्ति और जीवनशक्ति का अद्वैत

प्राचीन भारत की आध्यात्मिक परंपरा ने सृष्टि के रहस्यों को उद्घाटित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि संसार के संचालन में दो मूल प्रवाह साथ-साथ चलते हैं—एक है चेतना का आलोक और दूसरा है जीवन की सक्रियता। यही दोनों रूप हमारे ऋषियों ने गायत्री और सावित्री के रूप में प्रतिपादित किए। एक साधक को आत्मा की ओर ले जाती है तो दूसरी समाज और सृष्टि की गति को दिशा देती है।

गायत्री का स्वरूप है—ज्ञान, आत्मबोध, प्रज्ञा और अंत:करण की शुद्धि। सावित्री का स्वरूप है—कर्म, शक्ति, प्राण और समाज का संतुलन। ये दोनों मिलकर जीवन की पूर्णता का सूत्र प्रस्तुत करते हैं। गायत्री से साधक के भीतर प्रकाश फूटता है और सावित्री से वही प्रकाश समाज में रचनात्मकता का रूप लेता है।

इसी कारण नारद स्मृति में कहा गया है—

गायत्री छन्दसां माता विश्वस्युपकारिणी।
यस्यां नित्यं समाराध्ये सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

दूसरी ओर, महानिर्वाण तंत्र में सावित्री को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

सावित्री या प्रजासृष्टिः या देवी शक्तिरात्मिका।
सूक्ष्मा सा सावित्री विद्या स्थूलं सावित्र्युदाहृतम्॥

यहाँ सूक्ष्म चेतना को गायत्री कहा गया है और उसका स्थूल प्राकट्य सावित्री कहलाया। ऋग्वेद में भी इसे प्राण और अग्नि के संगम के रूप में परिभाषित किया गया है—

प्राणाग्निर्वेद्येऽथ या प्राणाग्निस्वस्वरूपिणी।
प्राणाग्निहोत्रमयी या सा सावित्री परा॥

जब साधक के भीतर यह प्राणाग्नि प्रज्वलित होती है तो सुप्त चेतना का जागरण होता है। यही स्थिति कुंडलिनी के उन्नयन में देखी जाती है। महानिर्वाण तंत्र में कहा गया है—

कुण्डलिनी शक्तिराविभवंति साक्षात्।
तत्र सा यत्र च कामेऽस्मिन्युगपत् प्रसृता भवेत्॥

स्पष्ट है कि गायत्री आत्मज्योति है और सावित्री उसकी जीवनशक्ति। एक के बिना दूसरी अधूरी है। केवल अंतर्मुखी होने पर साधक एकांगी रह जाएगा और समाज में उसका प्रकाश पहुँच नहीं पाएगा; जबकि केवल बहिर्मुखी होने पर शक्ति दिशाहीन होकर विनाशकारी सिद्ध होगी। इसीलिए गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा गया है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

—*2/48*

योगस्थ रहना गायत्री का स्वरूप है और कर्म करना सावित्री की अभिव्यक्ति। व्यावहारिक जीवन में भी यह समन्वय आवश्यक है। गायत्री साधक को अंत:करण की शुद्धि देती है और सावित्री वही शुद्धि समाजोपयोगी कार्यों में बदलती है। यही कारण है कि विष्णु धर्मसूत्र में कहा गया है—

गायत्र्याः प्रसरात्सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्।
सावित्र्याः प्रसवात्सर्वं प्राणिभ्यः सुखसम्पदः॥

संपूर्ण स्थावर-जंगम जगत् गायत्री से प्रकाशित है और प्राणियों की सुख-समृद्धि सावित्री से संभव होती है। ऋषियों की दृष्टि में गायत्री और सावित्री साधना और सेवा के दो पहलू हैं। गायत्री से साधक

को अंतर ज्योति मिलती है और सावित्री से बाह्य जीवन में संयम और सामर्थ्य।

दोनों के संगम से ही व्यक्ति का जीवन पूर्णता को प्राप्त करता है। यदि भीतर साधना है और बाहर सेवा का भाव नहीं तो वह साधना अपूर्ण है और यदि केवल बाहरी सक्रियता है, पर भीतर की साधना का आधार नहीं तो वह सक्रियता क्षणभंगुर सिद्ध होती है।

इसी सत्य को स्मृतिग्रंथों ने कुछ इस तरह स्पष्ट किया है—

न विद्या न तपसा ब्रह्मचर्येण नान्यथा।
सावित्रीमन्त्रसंपन्नो मोक्षमार्गेऽभिजायते॥

अतः न तो केवल विद्या, न तप, न ब्रह्मचर्य ही मुक्ति का साधन है, जब तक सावित्री का मंत्र और गायत्री का आलोक साथ न हों, साधक की यात्रा अधूरी रहती है।

गायत्री और सावित्री दो नहीं, एक ही चेतना के दो आयाम हैं। एक अंतर्ज्योति है—जो साधक को आत्मबोध कराती है, दूसरी बहिर्ज्योति है—जो उसे समाजोपयोगी कार्यों के लिए प्रेरित करती है। इन्हीं दोनों के समन्वय से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ पूर्ण होते हैं। यही जीवन की पूर्णता है, यही सृष्टि का रहस्य है और यही मानवता का परम धर्म है। ❑

राजा जनक विरक्त एवं निस्पृह राज्याधीश थे। एक बार उनके राज्य में किसी व्यक्ति से कोई भारी अपराध हो गया। राजा जनक के दरबार में उसे प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने उसे दंडस्वरूप उनके राज्य से दूर चले जाने की आज्ञा दी।

उस व्यक्ति ने राजाज्ञा सुनकर जनक से प्रश्न किया—"महाराज! मुझे आपका आदेश पूर्णतया स्वीकार है, मात्र मुझे इतना बता दीजिए कि आपके राज्य की सीमा कहाँ तक है?" उसका प्रश्न सुनते ही राजा जनक के अंतःकरण में कुछ चेतना-सी हुई।

उन्होंने सोचा—ये सारा संसार तो परमपिता का है, फिर भूमि के एक टुकड़े पर अपना अधिकार कैसे दिखा सकता हूँ? उन्होंने तुरंत उस व्यक्ति से क्षमा माँगते हुए कहा—"बंधु! मुझसे भूल हो गई। ये सारा संसार विधाता का है, मैं तो निमित्तमात्र बनकर यहाँ कार्यरत हूँ। तुम्हारा जहाँ हृदय करे, तुम वहाँ जाने को स्वतंत्र हो।" राजा जनक के इतना कहते ही उस व्यक्ति का स्वरूप बदल गया और वहाँ एक दिव्य पुरुष प्रकट हो गया, जो उनसे बोला—"राजन्! मैं धर्म हूँ, आपकी परीक्षा लेने आया था। आप निश्चय ही आप्तकामी पुरुष हैं, आप्तकाम व्यक्ति ही सर्वत्र परमपिता का अधिकार मानता है।"

देवर्षि नारद की पृथ्वी-यात्रा

सनातन धर्म के ग्रंथों और पुराणों में देवर्षि नारद एक ऐसे पात्र हैं, जिन्हें 'त्रिलोक संचारक' कहा गया है। वे केवल संदेशवाहक ही नहीं, बल्कि ज्ञान, कर्म, भक्ति और सत्य के मार्गदर्शक भी हैं। एक बार की बात है, जब देवर्षि नारद के मन में पृथ्वीलोक के प्राणियों की स्थिति जानने की जिज्ञासा हुई। वीणा की झंकार और भगवन्नाम जप के साथ वे सीधे पृथ्वी की ओर चल पड़े। जब नारद जी पृथ्वी पर उतरे तो उन्हें वह धरती, वैसी नहीं मिली, जैसी सतयुग में हुआ करती थी। प्रकृति की सुंदरता तो थी, पर मानवीय व्यवहार में भारी परिवर्तन आ चुका था। उन्होंने देखा कि धर्म का ह्रास हो चुका है। लोग धर्म को केवल दिखावे और कर्मकांड तक सीमित कर चुके थे।

धर्म का मनुष्य के जीवन और आचरण से कोई संबंध न था। हृदय की पवित्रता की जगह आडंबर ने ले ली थी। सर्वत्र कलह और द्वेष दिखाई पड़ते थे। भाई-भाई में विवाद था, पड़ोसी एकदूसरे से ईर्ष्या कर रहे थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना स्वार्थ में बदल चुकी थी। लोगों पर माया का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था।

हर कोई धन-संपत्ति और भौतिक सुखों को ही सर्वोपरि मानकर उसके पीछे अंधा होकर भाग रहा था। सुख और शांति की खोज में लोग दु:ख और अशांति को ही गले लगा रहे थे। नारद जी यह देखकर दु:खी हुए कि जिस मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि-विवेक दिया था, वह आज उसका उपयोग विनाश के लिए कर रहा है। अपनी यात्रा के दौरान नारद जी यमुना तट के निकट वृंदावन पहुँचे।

वहाँ उन्होंने एक अत्यंत हृदयविदारक दृश्य देखा। एक सुंदर युवती बैठी रो रही थी और उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्था में पड़े थे। देवर्षि ने पास जाकर पूछा—"देवी! आप कौन हैं और वृद्ध पुरुष आपके क्या लगते हैं?"

उस युवती ने उत्तर दिया—"हे देवर्षि! मेरा नाम भक्ति है। ये दोनों मेरे पुत्र हैं, जिनका नाम ज्ञान और वैराग्य है। आश्चर्य की बात यह है कि समय के प्रभाव से मैं तो युवा हूँ, लेकिन मेरे ये दोनों पुत्र वृद्ध और जर्जर हो गए हैं। पृथ्वी पर अब इन्हें कोई स्थान नहीं देता, इसलिए ये मूर्च्छित पड़े हैं।"

यह प्रसंग इस बात का प्रतीक है कि आज के युग में लोग कहने को भक्ति, कीर्तन, पूजा, उत्सव तो करते हैं, पर उनकी भक्ति दिखावा और आडंबर मात्र है, क्योंकि उनके जीवन में न तो वास्तविक 'ज्ञान' है और न ही सांसारिक विषयों से 'वैराग्य'।

नारद जी भक्ति की पीड़ा देखकर समाधान की खोज में बदरिकाश्रम पहुँचे, जहाँ उनकी भेंट सनकादि ऋषियों से हुई। ऋषियों ने बताया कि वेदों और उपनिषदों का सार 'श्रीमद्भागवत कथा' में है।

इसके स्वाध्याय से व तदनुरूप जीवन जीने से ही लोगों के अंदर मूर्च्छित पड़े ज्ञान और वैराग्य की मूर्च्छा टूटेगी और मनुष्य के भीतर ज्ञान और वैराग्य का जागरण होगा, जिससे वे धर्म के अनुरूप जीवन जिएँगे, देहपरायण जीवन नहीं, बल्कि आत्मपरायण, भगवद्परायण जीवन जिएँगे। फलस्वरूप मनुष्य को वास्तविक सुख-शांति प्राप्त होगी।

जब नारद जी ने हरिद्वार के गंगा तट पर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के निमित्त श्रीमद्भागवत का आयोजन किया, तो चमत्कार हुआ। कथा के प्रभाव से ज्ञान और वैराग्य पुनः युवा और पुष्ट हो गए। उक्त प्रसंग का आशय यही है कि सद्ग्रंथों का श्रवण, मनन, स्वाध्याय करते रहने से ही मनुष्य के अंदर भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि पुष्ट होते हैं, जिससे जीवन में सुख और शांति की प्राप्ति होती है।

जब तक मनुष्य में सही अर्थ में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का जागरण नहीं होता अर्थात वे मूर्च्छित अवस्था में हैं, तब तक मनुष्य धर्म और भक्ति का आडंबर भले ही करता रह सकता है, पर उसके आचरण में धर्म और भक्ति कदापि नहीं आ सकते।

नारद जी की यह पौराणिक पृथ्वी यात्रा वर्तमान समय के लिए बहुत ही प्रासंगिक है और एक दर्पण भी है। यदि हम आज के समाज का विश्लेषण करें तो हम यह पाते हैं कि आज मनुष्य के पास सुख-सुविधा के सारे साधन हैं, पर फिर भी वह दुःखी और अशांत है।

व्यक्ति का अवसाद और तनाव चरम पर है। कारण वही है—ज्ञान और वैराग्य का अभाव। नैतिक मूल्यों का पतन।

आज व्यक्ति ने सत्य और ईमानदारी के स्थान पर छल-कपट को ही मूलमंत्र मान लिया है। इसका समाधान क्या है? नारद जी की यात्रा हमें सिखाती है कि केवल भक्ति और धर्म का दिखावा व आडंबर करने, केवल बाहरी भाग-दौड़ से और केवल भौतिक सुख-साधनों से सुख नहीं मिलेगा। जब तक हम अपने भीतर भक्ति के साथ सही ज्ञान और वैराग्य को जाग्रत नहीं करेंगे, तब तक सुख-शांति पाना असंभव है।

देवर्षि नारद की उक्त पृथ्वी-यात्रा केवल एक भ्रमण नहीं थी, बल्कि मानवता के उद्धार का एक अभियान था। उन्होंने संसार को यह संदेश दिया कि समय चाहे कितना भी बदल जाए, मनुष्य को अपनी जड़ों और आध्यात्मिक मूल्यों से जुड़े रहना चाहिए; क्योंकि यही वास्तविक सुख-शांति का स्रोत है। ❑

एक फकीर से मिलने उनके मित्र पहुँचे। उन्हें देखकर बोले—"बहुत दिन से तुम्हारा कुछ पता नहीं था, लोग कहते थे कि तुम दिन भर भगवद्भजन में मग्न रहते हो, इसलिए तुम्हारा हाल-चाल लेने चला आया।"

फकीर ने उत्तर दिया—

खोजा सकल जहान में पाया तेरा पता नहीं।
जब पता तेरा लगा तो अब पता मेरा नहीं॥

अर्थात जब भगवान को हर जगह खोजा, तब वह मिला नहीं और जब से अपना अहंकार मिटाकर बैठा हूँ, तब पता चला कि वह तो मेरे ही भीतर था।

विचारों का महत्त्व और आत्मविकास

मनुष्य का उत्थान या पतन उसके विचारों पर निर्भर करता है। शुभ और सृजनात्मक चिंतन से जीवन स्वर्ग समान बनता है; जबकि अधोगामी और दुष्ट विचार नरक का द्वार खोल देते हैं।

विचार केवल क्षणिक मनोविलास नहीं हैं, वे हमारी मानसिकता और आचरण पर गहरा प्रभाव डालते हैं। यदि विचार उच्च, सात्त्विक और प्रेरणादायी हों, तो उनका प्रकाश संपूर्ण जीवन को आलोकित कर देता है।

इसके विपरीत, नकारात्मक और अधोगामी चिंतन मनुष्य को पाशविक प्रवृत्तियों की ओर ढकेल देता है। व्यावसायिक दृष्टि से भी विचारों का महत्त्व है। अच्छा व्यापारी वही है, जो ग्राहकों और सहकर्मियों के साथ सत्प्रवृत्तियों पर आधारित व्यवहार करे।

जब व्यक्ति का मन शुद्ध होता है, तभी उसके कार्य, व्यवहार और संबंधों में भी शुचिता आती है। आज संसार में अनेकों समस्याएँ केवल इसलिए हैं; क्योंकि मानव ने अपने विचारों की पवित्रता खो दी है।

स्वार्थ, क्रोध, लोभ, अहंकार और कामुकता ने मिलकर मनुष्य को असंतुलित बना दिया है। यदि मनुष्य विचारों में शुद्धता और संतुलन ला सके तो उसके जीवन में सामंजस्य और शांति स्वतः ही स्थापित हो जाएगी।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी विचारों का महत्त्व सर्वोपरि है। सत्साहित्य का अध्ययन, संतों का सान्निध्य और मनन-चिंतन यह सब हमारे विचारों को ऊँचाई प्रदान करते हैं। यही साधना का वास्तविक स्वरूप है।

महान संतों ने कहा है—"मनुष्य का वास्तविक खजाना धन या संपत्ति नहीं, बल्कि उसके विचार हैं। जिस व्यक्ति के विचार महान होते हैं, उसका जीवन भी महान हो जाता है। अतः आवश्यक है कि हम अपने विचारों को निरंतर परिष्कृत करते रहें। इसके लिए स्वाध्याय करें, श्रेष्ठ संगति अपनाएँ और आत्ममंथन करें। यही मार्ग हमें व्यक्तिगत शांति और सामाजिक समृद्धि की ओर ले जाएगा।" □

अध्यात्म विज्ञान के साधकों को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करना पड़ता है। उन्हें सोचना होता है कि मानव जीवन की बहुमूल्य धरोहर का इस प्रकार उपयोग करना है, जिससे शरीर का निर्वाह, लोक-व्यवहार भी चलता रहे, पर साथ ही आत्मिक अपूर्णता को पूर्ण करने का चरम लक्ष्य भी प्राप्त हो सके। ईश्वर के दरबार में पहुँचकर सीना तानकर यह कहा जा सके कि जो अमानत जिस प्रयोजन के लिए सौंपी गई थी, उसे उसी हेतु सही रूप में प्रयुक्त किया गया।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

गायत्री के सिद्ध साधक

जिला अमृतसर के एक गाँव में एक परमहंस बाबा वर्षों से रह रहे थे। उनके आध्यात्मिक आभामंडल से आकर्षित हो लोग उनके पास खिंचे चले आते थे। उनके आशीर्वाद से लोगों का कल्याण हुआ करता था। इसी गाँव का एक बालक जब कभी बाबा की कुटिया के पास से गुजरता तो वहाँ लोगों की भीड़ देखकर और लोगों को बाबा के समक्ष दंडवत् होते हुए देखकर उसे अपार आश्चर्य होता।

गाँव में और भी लोग हैं, किसी को हर कोई दंडवत् होकर प्रणाम नहीं करता है। आखिर सभी लोग बाबा को ही दंडवत् या प्रणाम क्यों करते हैं? लगता है बाबा बहुत बड़े आदमी हैं। इसलिए उनसे सभी लोग मिलने को लालायित रहते हैं—आदि विचार बालक के मन में आते। अचानक उस बालक के मन में यह विचार आया कि क्यों न स्वयं बाबा से मिलकर मैं अपने मन में उठने वाले प्रश्नों का जवाब पूछ लूँ?

कुछ दिनों बाद ही बालक बाबा की कुटिया के पास से गुजर रहा था कि तभी उसने देखा कि बाबा वहाँ अकेले बैठे हैं। वह उनके समीप गया एवं बिना किसी भूमिका के उसने उनसे बड़े ही निश्छल भाव से पूछा—"बाबाजी! मुझे लगता है कि आप इस दुनिया में सबसे बड़े आदमी हैं।" "वह कैसे?" बाबा ने हँसकर पूछा।

बालक ने कहा—"आपके पास जो भी आता है, वही आपको दंडवत् करता है और हर कोई आपसे मिलना भी चाहता है। अच्छा, आप मुझे यह बताइए कि आप इतने बड़े आदमी कैसे हो गए?"

बालसुलभ निश्छल मन से पूछे गए सवाल को सुनकर बाबा भावविभोर हो उठे और स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"बेटा! तुम्हें भूख लगी है, लो खाओ।" बाबा के हाथ से मिठाई लेकर खाते हुए बालक ने उनसे पुनः वही प्रश्न किया—"बताइए न? आप बड़े आदमी कैसे हुए? मैं भी आप ही की तरह बड़ा आदमी बनना चाहता हूँ।"

बाबाजी खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—"अच्छा तो यह बात है। तू भी बड़ा आदमी बनना चाहता है? देख बेटा! मैं हमेशा भगवान का नाम जप करता हूँ। भगवान का ही चिंतन, मनन, स्मरण, ध्यान करता हूँ। इसी से मैं बड़ा आदमी बना हूँ। यदि तू भी ऐसा करेगा तो तू भी मेरी तरह एक दिन बड़ा आदमी बन जाएगा।" बालक ने उत्तर दिया—"यदि भगवान का नाम-जप, स्मरण, ध्यान करने से बड़ा आदमी बना जा सकता है, तो मैं भी ऐसा करूँगा।"

यह घटना उस समय की है, जब उस बालक की उम्र मात्र 4 वर्ष की थी। पूर्वजन्म में किए गए जप, तप, भगवद्ध्यान का प्रभाव अगले जन्म में व्यक्ति पर अवश्य होता है। यदि पूर्वजन्म में विशेष जप, तप, ध्यान न किए गए हों तो मात्र 4 वर्ष की आयु में किसी बालक के मन में भगवद्भक्ति, भगवद्ध्यान, संत, ऋषि, योगी के प्रति इस तरह का आकर्षण संभव नहीं।

बाबा के कहे अनुसार वह बालक भगवान का नाम जपने लगा। धीरे-धीरे वह बालक बड़ा होने लगा। उस बालक का नाम रामदास था।

कुछ वर्षों बाद रामदास के जीवन में एक अद्भुत घटना हुई। नित्य प्रात: जलपान करने के बाद वह घर की 4 भैंसों को गाँव से कुछ दूर चराने ले जाता था।

एक दिन वह भैंसों को मैदान में चरते हुए छोड़कर एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान का नाम-जप और हृदय में भगवान की मधुर छवि का ध्यान कर रहा था। ठीक उसी समय एक अपरिचित बाबा न जाने किधर से आए और उससे बोले—''बच्चा! कुछ खिलाओ, मुझे बड़ी भूख लगी है।''

रामदास ने कहा—''जरूर खिलाऊँगा बाबा! पर हाँ, आपको एक काम करना होगा। आप यहाँ बैठकर मेरी भैंसों पर नजर रखिए और मैं अपने घर जाकर आपके लिए कुछ खाने को ले आता हूँ।''

उस साधु बाबा ने कहा—''ठीक है बेटा! तुम मेरे लिए भोजन ले आओ। तब तक मैं तुम्हारी भैंसों पर नजर रखता हूँ।'' रामदास दौड़ता हुआ घर पहुँचा। घर के सभी लोग खा-पीकर सो गए थे। रसोई में कोई बना-बनाया भोजन बचा नहीं था। सो रामदास भंडार घर से आटा, दाल ही लेकर साधु के पास पहुँचा और उन्हें सामग्री देते हुए कहा—''इसे बनाकर आप खा लीजिए। मैं आपके लिए पानी लाए देता हूँ।''

भोजन करने के बाद साधु ने कहा—''बेटा! तुम एक दिन बहुत बड़े आदमी बनोगे। तुम योगीराज बनोगे। तुम बहुत बड़े योगी बनोगे।'' रामदास ने कुतूहलवश पूछा—''यह कैसे होगा बाबा? मेरे माता-पिता हैं, भाई हैं, भैंस हैं। मैं नित्य पाँच सेर दूध पीता हूँ। मैं योगीराज कैसे बन सकता हूँ।'' साधु ने कहा—''बेटा! तूने अपने पूर्वजन्म में भी खूब भगवद्भजन, भगवद्ध्यान किए हैं और अब मेरे मुँह से भी यह आशीर्वाद निकल गया है, तब तुम योगीराज बनकर रहोगे।'' इतना कहकर वह साधु महाराज वहाँ से चल पड़े और कुछ दूर जाते ही अदृश्य हो गए। दूर-दूर तक देखने पर भी वे दिखाई नहीं दिए।

रामदास को लगा जैसे उसके मन में कुछ हलचल हुई हो। क्या हुआ है, कुछ समझ नहीं आया। समयानुसार उसका उपनयन संस्कार हुआ और गायत्री मंत्र प्राप्त हुआ। वह नित्य गायत्री मंत्र जप करने लगा।

उसे पढ़ने को पाठशाला भेजा गया। उसकी मेधा शक्ति देखकर पाठशाला के गुरुजी दंग रह जाते; क्योंकि एक बार वह जिस पुस्तक को पढ़ लेता, उसे वह कंठस्थ हो जाती थी। गुरुजी के यहाँ वह लगातार दस वर्षों तक विष्णु सहस्रनाम, श्रीमद्भागवत, व्याकरण, ज्योतिष आदि ग्रंथों का अध्ययन करता रहा।

शिक्षा समाप्त होने पर पिता ने उसके विवाह की तैयारी प्रारंभ कर दी, परंतु रामदास ने विवाह करने से साफ इनकार करते हुए कहा—''पिताजी मुझे विवाह नहीं करना है। आप मेरे छोटे भाइयों का विवाह कर दीजिए।''

पिता को रामदास के वैराग्य भाव को देखते हुए न चाहते हुए भी उसकी बात माननी पड़ी। रामदास के पाठशाला वाले गुरुजी ने एक बार बातचीत के दौरान कहा था कि सवा लाख गायत्री मंत्र-जप अनुष्ठान करने पर साधक को सिद्धि प्राप्त होती है।

रामदास के मन में आया कि क्यों न गुरुजी की बात को अपने जीवन में प्रयोग करके देखें और यही सोचकर उसने अपने घर के पास सुनसान स्थान में एक बरगद वृक्ष के नीचे बैठकर सवा लाख गायत्री मंत्र-जप का अनुष्ठान प्रारंभ कर दिया।

दिन गुजरते गए। धीरे-धीरे एक लाख गायत्री मंत्र-जप पूर्ण हुआ। अब मात्र पच्चीस हजार मंत्र-जप शेष था। उसी दिन घर जाते समय वृक्ष पर से किसी अदृश्य वाणी ने कहा—''वत्स! शेष पच्चीस

हजार जप तुम ज्वालामुखी में जाकर करो, तब मैं सिद्ध हो जाऊँगी अर्थात तुम्हारी गायत्री-साधना सिद्ध हो जाएगी।''

इस वाणी को सुनकर रामदास चौंका। उसने सोचा कि मेरे अलावा किसी दूसरे को कैसे मालूम चला कि मैं गायत्री मंत्र सिद्ध कर रहा हूँ, पर अंतिम बात सुनने के बाद वह समझ गया कि गायत्री माँ स्वयं उससे ऐसा कह रही हैं। गायत्री माता की वाणी को सुनकर उसका हृदय आह्लादित हो उठा। उसके रोम-रोम पुलकित हो उठे। दूसरे ही दिन वह अपने भतीजे के साथ अपने गाँव से 80 मील दूर स्थित ज्वालामुखी मंदिर की ओर चल पड़ा।

मार्ग में सहसा एक जगह एक साधु को देखते ही उसके पैर अपने-आप रुक गए। साधु के पास जाकर उसने उन्हें साष्टांग दंडवत् किया। साधु ने सिर पर हाथ रखकर उसे हृदय से आशीर्वाद दिया। साधु महाराज के स्पर्श से उसके समस्त शरीर में एक अद्भुत आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार हुआ। साधु महाराज की ओर देखते हुए उसने कहा—''महाराज! आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।'' रामदास की श्रम, लगन, भक्ति, निष्ठा को देखकर साधु ने उसे अपना शिष्य बना लिया।

गुरु-आज्ञा से उसने ज्वालामुखी जाकर शेष पच्चीस हजार गायत्री मंत्र-जप पूर्ण कर लिया। गुरु दीक्षा और संन्यासी बन जाने के बाद वह अपने गाँव के उस बरगद वृक्ष के नीचे बैठकर गायत्री मंत्र-जप व ध्यान करने लगा, जहाँ वह पूर्व में गायत्री मंत्र-जप किया करता था।

एक दिन रात्रि में स्वयं गायत्री माता प्रकट हुईं और कहा—''वत्स! अब तुम्हें जप करने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हारी साधना से प्रसन्न हूँ। बोलो, मैं तुम्हें कौन-सा वर दूँ?''

रामदास ने कहा—''मुझे कुछ नहीं चाहिए माँ। आप केवल मुझ पर प्रसन्न रहा करें।'' ''तथास्तु'' कहकर गायत्री माँ अंतर्धान हो गईं। आगे चलकर रामदास ही रामदास काठिया बाबा के नाम से विख्यात हुए। ❑

एक बाग में दो वृक्ष थे। एक बिलकुल सूख गया था, दूसरा हरा-भरा था। सूखे वृक्ष पर गिद्ध निवास करता था; जबकि हरे वृक्ष पर कोयल रहती थी। दोनों में प्रायः विवाद हो जाया करता था। गिद्ध कहता था कि संसार मिथ्या है, कोयल कहती थी कि संसार सत्य है।

एक दिन तोते ने उनके विवाद को सुना तो बोला—''व्यर्थ झगड़ा न करो, संसार परिवर्तनशील है। जो संसार की आसक्ति से परे चले जाते हैं, उनके लिए यह जगत् मिथ्या है, पर शेष के लिए यह सत्य है। इस सत्य के अनुरूप जो स्वयं को ढाल लेता है, वही इस संसार का सही अर्थ जान पाता है।''

योग-स्वस्थ जीवन का आधार

योग का वास्तविक अर्थ है—मिलन। व्यक्ति का अपने आत्मस्वरूप से जुड़ना। साधना और अभ्यास के माध्यम से जब मनुष्य आत्मा और परमात्मा के मिलन की दिशा में आगे बढ़ता है, तो उसकी जीवनशक्ति का विकास होता है। यही कारण है कि योग-साधना को आत्मकल्याण और लोक-कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग माना गया है।

परिवार और समाज में रहते हुए मनुष्य अनेक उलझनों, तनावों और जिम्मेदारियों से घिरा रहता है। यह परिस्थितियाँ अक्सर उसे थका देती हैं और भीतर असंतुलन पैदा कर देती हैं। योग-साधना इसी असंतुलन को दूर करने का उपाय है। यह शरीर को ऊर्जा, मन को शांति, बुद्धि को स्पष्टता और आत्मा को बल प्रदान करती है।

योग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह जीवन को संतुलित करता है। नियमित साधना से शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न होता है और विचारों में स्पष्टता आती है। रोगों से बचाव, शक्ति में वृद्धि और आयु में विस्तार, यह सब योग के सहज उपहार हैं। मनुष्य के जीवन में कई बार निराशा, उदासी या असफलताओं का अँधेरा छा जाता है।

ऐसे में योग, ध्यान और प्राणायाम मनुष्य को भीतर से स्थिर और दृढ़ बनाते हैं। योगाभ्यास से आत्मबल इतना प्रबल हो जाता है कि व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में भी शांत और संतुलित बना रहता है। योग न केवल शारीरिक स्वास्थ्य का साधन है, बल्कि यह मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का भी स्रोत है। यह व्यक्ति को रोगों से लड़ने की क्षमता देता है और भीतर से आशावादी दृष्टिकोण विकसित करता है।

आज के दौर में, जब जीवन तेजी से भाग रहा है और तनाव हर जगह व्याप्त है, योग ही वह साधन है, जो मनुष्य को संतुलन, संयम और सामंजस्य का मार्ग दिखा सकता है। नियमित योगाभ्यास जीवन को न केवल लंबा और स्वस्थ बनाता है, बल्कि उसे सार्थकता और आनंद से भी भर देता है।

मानव जीवन का मूल उद्देश्य केवल भोग और तृप्ति नहीं, बल्कि आत्मिक उत्थान और सामंजस्य की प्राप्ति है। योग इस दिशा में सबसे विश्वसनीय साधन है। नियमित अभ्यास से मनुष्य का शरीर स्वस्थ, मन शांत और बुद्धि स्पष्ट होती है। इसके साथ ही जीवन में वह दृढ़ता और संतुलन आता है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी सहारा देता है।

जब जीवन की गति असंयमित हो जाती है और व्यक्ति केवल इच्छाओं के पीछे भागता है, तब उसका मानसिक संतुलन खो जाता है। योगाभ्यास उसे संयम और आत्मनियंत्रण का मार्ग दिखाता है। संयमित आहार, नियमित साधना और आत्मचिंतन, ये तीन वो आधारस्तंभ हैं, जिन पर योगमय जीवन टिका होता है।

योग हमें यह सिखाता है कि स्वास्थ्य केवल शारीरिक शक्ति तक सीमित नहीं है। मानसिक स्थिरता, विचारों की स्पष्टता और आत्मिक संतोष भी स्वास्थ्य के उतने ही आवश्यक अंग हैं। जब मनुष्य इन सभी स्तरों पर सामंजस्य स्थापित कर लेता है, तभी वास्तविक स्वास्थ्य संभव है।

इतिहास में अनेक महान ऋषियों और मनीषियों ने योग के बल पर असाधारण क्षमताएँ अर्जित कीं।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

उन्होंने तप और साधना के द्वारा न केवल अपने जीवन को ऊँचा उठाया, बल्कि समाज को भी दिशा दी। यही कारण है कि आज भी योग को जीवन की सबसे बड़ी औषधि और सबसे सशक्त साधन माना जाता है।

योगाभ्यास का लक्ष्य केवल शरीर को बलवान बनाना नहीं, बल्कि जीवन को संतुलित करना है। यह व्यक्ति को भीतर से इतना दृढ़ बना देता है कि वह विपरीत परिस्थितियों का भी शांत मन से सामना कर सकता है। यही कारण है कि योग को आत्मकल्याण और विश्व-कल्याण दोनों का मार्ग कहा गया है।

आज की भाग-दौड़ भरी दुनिया में जहाँ तनाव और चिंताओं ने जीवन को जकड़ रखा है, योग ही ऐसा उपाय है, जो मनुष्य को आंतरिक शांति और बाहरी सामंजस्य प्रदान कर सकता है। यह शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में पिरोकर जीवन को संपूर्ण बनाता है। आज की आपा-धापी और तनावपूर्ण परिस्थितियों में योग-साधना केवल शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि यह जीवन के हर पहलू को छूती है। संतुलित आहार, संयमित व्यवहार, मानसिक शांति और आध्यात्मिक दृष्टि—ये सब योग के स्वाभाविक फल हैं।

योग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह जीवन की दिशा और दृष्टि दोनों को बदल देता है। शरीर को स्वस्थ करने के साथ-साथ यह मनुष्य को आत्मनियंत्रण और विवेकशीलता का अभ्यास कराता है। योग-साधना करते हुए साधक धीरे-धीरे अपने भीतर एक आंतरिक प्रकाश का अनुभव करता है, जो उसे कठिन परिस्थितियों में भी संतुलित रखता है।

शास्त्रों में कहा गया है कि योगी को न तो अति भोजन करना चाहिए, न ही बिलकुल उपवास से अपने शरीर को दुर्बल करना चाहिए। जीवनशैली संतुलित होनी चाहिए। 'योगी भोजन में संयम रखे, नियमित आचार-विचार अपनाए और निद्रा-जागरण का समुचित संतुलन साधे।' यही योग के अभ्यास का वास्तविक स्वरूप है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

—6/17

अर्थात जो व्यक्ति आहार-विहार में संयमित है, कर्मों में संतुलित है और निद्रा-जागरण को उचित रूप से साधता है, वही सच्चे योग का अधिकारी बनता है।

योग का लक्ष्य केवल शरीर को सुदृढ़ बनाना नहीं है, बल्कि जीवन को पूर्ण और सार्थक बनाना है। योग के अभ्यास से भीतर का तनाव, चिंता और अवसाद समाप्त होते हैं और आत्मा में शांति का अनुभव होता है।

न विक्षेपो न चैकाग्रहं नातिबोधो न मूढ़ता।
न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तस्य योगिनः ॥

अर्थात शांत हुए योगी के लिए न विक्षेप हैं और न एकाग्रता है, न बोध है और न मूर्खता है, न सुख है न दुःख है।

गीता में एक और स्थान पर कहा गया है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

—2/48

अर्थात हे अर्जुन! योगस्थ होकर कर्म करो। आसक्ति को त्यागकर, सफलता-असफलता में समान बने रहो। यही समत्व ही योग है। योग-साधना का यही वास्तविक स्वरूप है—जीवन में संतुलन, मन में शांति और आत्मा में प्रकाश। यही कारण है कि प्राचीनकाल से लेकर आज तक योग को जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता माना गया है। ❑

जीवन को उद्‌देश्यपूर्ण जिएँ

मनुष्य का जीवन अमूल्य है। हमें इसे यों ही व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। यह मानकर चलना चाहिए कि मृत्यु कभी भी आ सकती है। जब यह स्मरण मन में गहराई से बैठ जाता है तो जीवन के प्रत्येक क्षण की महत्ता समझ में आती है। फिर व्यक्ति अपने हर कार्य में श्रेष्ठता, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा लाता है। यदि मृत्यु को हम सदैव सामने रखकर जीते रहें तो हमारे भीतर भय नहीं, बल्कि जागरूकता और प्रेरणा उत्पन्न होते हैं।

यह विचार जीवन को सजग और अनुशासित बना देता है। मनुष्य को यह स्मरण दिलाता है कि समय सीमित है और उसे सार्थक बनाना ही सच्चा पुरुषार्थ है। मृत्यु की छाया जब मन पर पड़ती है तो आलस्य और प्रमाद स्वतः दूर हो जाते हैं। व्यक्ति अपने जीवन का मूल्य पहचानने लगता है और प्रत्येक क्षण का उपयोग सृजनशील कार्यों में करता है।

यही सोच आत्मबल प्रदान करती है और हमें जीवन की ऊँचाइयों तक ले जाती है। जो लोग मृत्यु को भूल जाते हैं, वे प्रायः जीवन को हलके में लेते हैं, परंतु जिन्होंने मृत्यु को सामने रखकर जीवन जिया है, वे ही वास्तव में महान कार्य कर पाए हैं। वे निरंतर यह अनुभव करते हैं कि जीवन क्षणभंगुर है, इसलिए इसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

मृत्यु का स्मरण हमें भयभीत करने के लिए नहीं, बल्कि जीवन को सार्थक और उद्‌देश्यपूर्ण बनाने के लिए है। यह हमें सिखाता है कि हर दिन, हर क्षण को ऐसे जिएँ, जैसे वह अंतिम हो। यही दृष्टि हमें उत्कृष्टता, सद्‌गुण और समाजहितकारी कार्यों की ओर प्रेरित करती है।

इस प्रकार मृत्यु को सामने रखकर चलना ही वास्तविक जीवन-साधना है। यही मनुष्य को अमर बनाती है और तब उसका जीवन समाज के लिए प्रेरणास्रोत बन जाता है। ❑

गांधी जी युवा थे तो कुसंगत में पड़ गए। बुरी आदतों को पूरा करने के लिए उन्हें कर्ज लेना पड़ा। जब कर्जदार कर्ज चुकाने के लिए परेशान करने लगा तो उन्होंने घर से सोना चुराकर कर्ज अदा कर दिया। कर्ज तो चुक गया, परंतु चोरी करने के कारण उनके मन में गहरा अपराध बोध रहने लगा। पिताजी से सीधे कहने की हिम्मत नहीं पड़ी तो उन्होंने पिताजी के नाम एक पत्र लिखा और उसमें अपना सारा दोष बता दिया। पिताजी ने उन्हें क्षमा कर दिया। गांधी जी ने उसी दिन संकल्प लिया कि वे भविष्य में ऐसी गलती कभी नहीं करेंगे। भगवान के सम्मुख सच्चे हृदय से अपने दोष स्वीकार कर लेने से अंतर्मन निर्मल हो जाता है।

पर्व विशेष-श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

पूर्णपुरुष के जीवन से प्रेरणा लेने का पर्व

भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भारतवर्ष में जन्माष्टमी का पर्व मनाया जाता है। इस वर्ष यह तिथि 4 सितंबर को आ रही है। इसी दिन पूर्णपुरुष योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था। भारतीय समाज की सनातन आस्था से जुड़े लोग और भक्त समाज इस दिन को अत्यंत उत्साह एवं उमंग से मनाते हैं। हमारे पर्व-त्योहारों की अटूट शृंखला में इस पर्व का एक विशेष स्थान है। धर्म, संस्कृति और अध्यात्म के मर्म को स्वयं में समाहित किए यह जन्माष्टमी उत्सव सभी में प्रेम, पुरुषार्थ, न्याय, भक्ति और आनंदमय जीवन की दिव्य प्रेरणाएँ लेकर प्रकट होता है।

भगवान श्रीकृष्ण का अवतरण और उनका लीला-चरित्र मानव इतिहास की एक दुर्लभतम घटना है। हजारों वर्ष पूर्व घटित होने के बावजूद भी यह कालजयी रूप में उतनी ही प्रासंगिक और प्रेरक उदाहरण के रूप में विश्व मानवता को जीवन के महान आदर्शों का बोध कराती है। अन्याय, अधर्म और अहंकार से मानवीयता सदैव पीड़ित ही होती है और जब यह चरम पर हो तो स्थिति अत्यंत दयनीय और कष्टकारक हो जाती है।

ऐसी पीड़ादायक अवस्था से उबारने के लिए ही अवतारी सत्ता के रूप में ईश्वरीय कृपा बरसती है और पुनः धर्म, न्याय, कर्त्तव्य और मानवता की पुनर्स्थापना संभव होती है। भगवान श्रीकृष्ण का जीवन ऐसी ही अवतारी चेतना के शिखर पर आरूढ़ है। उनका जन्म ऐसे समय हुआ, जब सामाजिक और राजनीतिक स्थिति विपन्न थी और अधर्म, अन्याय का कहीं कोई प्रतिकार नहीं था। कंस, जरासंध, शिशुपाल, दुर्योधन, नरकासुर जैसे महाअभिमानी, क्रूर अधर्मियों से सामान्यजन निरंतर पीड़ित-प्रताड़ित हो रहे थे।

उस युग में इन्हीं आततायियों का प्रतिकार कर धरती पर धर्म, न्याय की स्थापना के लिए स्वयं परमात्मा ने भगवान श्रीकृष्ण के रूप में अवतार स्वरूप धारण किया था। भगवान के इस अवतार चरित्र का हरेक पहलू अत्यंत विलक्षण, प्रेरक और शिक्षाप्रद है। उनका जन्म भी आसुरी षड्यंत्रों के बीच कठोर कारागार में हुआ और बचपन से युवावस्था तक निरंतर उनके जीवन को नष्ट करने के प्रयास होते रहे, परंतु स्वयं अवतारी पुरुष होने के कारण उन पर न कोई षड्यंत्र काम आया न कुचक्र की चालें।

अंततः आसुरी प्रवृत्तियों को पराजित और नष्ट होना पड़ा। उस समय के अनेक उत्पाती व अनाचारी राक्षसों का संहार करते हुए भी उन्होंने जिस गोकुल ग्राम में बचपन बिताया, वहाँ ग्वाल-बालों को संगठित-शिक्षित करते हुए बाल-लीलाओं के रूप में हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन के अनुपम आदर्शों को स्थापित किया।

कला, साहित्य, संगीत से लेकर भक्ति के क्षेत्र को भगवान कृष्ण की बाल-लीलाओं से समृद्ध देखा जा सकता है। जीवन के प्रत्येक आयाम में विविधताओं, विशिष्टताओं और गूढ़ताओं से परिपूर्ण भगवान कृष्ण का जीवन भारतीय अध्यात्म का शिखरस्थ व्यक्तित्व है। कठिनतम परिस्थितियों में भी निरंतर सहज मुस्कान के साथ त्याग, साहस, शौर्य और निष्कामता का विलक्षण उदाहरण बनकर वे मानव जीवन योग-अध्यात्म की पराकाष्ठा का संदेश सुनाते दिखाई पड़ते हैं।

अवतारों में अन्य किसी ने भी इतनी विविधता और पूर्णता को अभिव्यक्त नहीं किया, जितनी भगवान कृष्ण के जीवन में व्याप्त दिखती है। भगवान की इस कृष्णरूपी अवतार-लीला में उनके बचपन की लीलाएँ तो परमानंद और भक्ति की संचारक हैं ही, इसके आगे का चरित्र भी दिव्य, अद्भुत और परम प्रकाशक है। वे महारास में प्रेम का शिखर हैं, तो राजनीति में एक कर्मठ योद्धा। युद्ध में भी परम शांति और ज्ञान के प्रकाशक हैं, तो भक्ति और सेवा की पराकाष्ठा को दरसाने वाले भक्तवत्सल भगवान भी।

लीलापुरुप के रूप में जीवन के पग-पग पर योग और अध्यात्म की गूढ़ता को चरितार्थ करने वाले भगवान श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व पूर्णता और समग्रता का द्योतक है। घोर अशांति, संघर्ष के बीच भी परम शांति और वैराग्य की स्थिति में बने रहने का अप्रतिम आदर्श है भगवान श्रीकृष्ण का जीवन-चरित्र। उनके द्वारा सुनाया गया गीतारूपी शाश्वत संदेश केवल अर्जुन के लिए ही नहीं, अपितु समस्त मानव जाति के लिए है।

व्यक्ति के जीवन में जब कभी द्वंद्व, भ्रम, संकट और विपरीतताएँ मौजूद हों तो उनसे उबरने के लिए श्रीकृष्ण की वाणी महौपधि का कार्य करती है। ये वो प्रखर, ओजस्वी और प्रेरक स्वर हैं, जो कठिनतम परिस्थितियों में भी मानव मन को शांत, स्थिर और जाग्रत कर जीवन संग्राम में लगे रहने की तत्परता व मार्ग निर्दिष्ट करते हैं।

उनके वचन टूटती-बिखरती भावनाओं में आत्मविश्वास की शक्ति प्रदान कर जीवन को आंतरिक दुर्बलता से मुक्त बनाते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान में मानव मन एवं चेतना के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के जितने आयाम दिखाई देते हैं, उनसे कहीं ज्यादा और अंतर्दृष्टिसंपन्न विश्लेषण एवं मानव चेतना की गहराई से की गई पड़ताल को गीता में देखा जा सकता है।

मानवीय चेतना की संपूर्णता और सर्वोच्चता का दिग्दर्शन कराने वाले भगवान कृष्ण की जीवन-लीला हर दृष्टि से प्रेरक, बोधमय और कल्याणकारी है। उनका जीवन-चरित्र एवं उनकी वाणी हर युग में मनुष्य को उत्साह, आत्मविश्वास और ज्ञान का सहज अनुदान प्रदान करने वाले हैं।

बाह्य जीवन की कार्यकुशलता, कर्मठता और निर्लिप्तता तथा आंतरिक जीवन में प्रेम, भक्ति, आनंद और शांति-स्थिरता को उत्पन्न करने वाले अद्वितीय जीवन दर्शन को साकार रूप में चित्रित करने वाले भगवान कृष्ण इतिहास में इकलौते हैं। उनका धरती पर अवतरण और लीला-चरित्र केवल उस युग की तत्कालीन समस्याओं के समाधान तक परिधि में आबद्ध नहीं है, अपितु आज भी उतना ही प्रासंगिक, प्रेरक और सच्चे अर्थों में मानव मात्र के जीवन-पथ का परम प्रकाशक है।

वर्तमान की भटकती, भ्रमित जिंदगी और मानवता के लिए कृष्ण जन्माष्टमी यही सुअवसर-सौभाग्य लेकर प्रस्तुत है कि भगवान श्रीकृष्ण के बताए जीवन-पथ पर चलने के लिए प्रेरित और संकल्पित हो इस पर्व की सार्थकता को सिद्ध कर भगवान कृष्ण के प्रति अपनी सच्ची आस्था को प्रकट करें।

सभी के लिए यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व स्वयं के जीवन का गंभीरतापूर्वक मूल्यांकन करने का अवसर है। पूर्ण उत्साह एवं भक्ति-भाव से इस विशिष्ट पर्व को मनाते हुए इसके दिव्य संदेश एवं प्रेरणाओं को जीवन में उतारने के लिए तत्पर होना चाहिए।

कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी में आंतरिक चेतना का एवं संपूर्ण जीवन का स्नान हो, यही इस पर्व का मूल मंतव्य है। ऐसी उच्च भावनाओं के साथ स्वयं इसे मनाते हुए इसकी प्रेरणाओं से अन्यों को जोड़ना भी आवश्यक है। आधुनिक समाज में बढ़ते फैशन, प्रदर्शन और मनोरंजन की उथली

प्रवृत्तियों ने हमारे अनेक पर्व-त्योहारों के स्वरूप को प्रभावित कर किसी उथले आयोजन की तरह मनाने की परंपरा उत्पन्न कर दी है।

पवित्र स्थलों, मंदिरों आदि का वातावरण भी इससे अप्रभावित नहीं है। ऐसी कुरीतियों, गलत परंपराओं पर अंकुश नहीं लगाया जाए तो आने वाली पीढ़ी में इन पर्वों से जुड़े हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को हस्तांतरित कर पाना मुश्किल हो जाएगा। शुद्ध और सात्त्विक स्वरूप में प्रचलित परंपराओं ने ही इन पर्व-त्योहारों की विरासत को निरंतर सँभाले रखा है।

आगे भी यही क्रम बना रहे, इसके लिए आवश्यक है कि पर्व की मूल भावना, उद्देश्य, प्रेरणा एवं पूजा-उपासना के विधान से स्वयं व समाज को सजगता के साथ जोड़े रखा जाए। यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व भगवान कृष्ण के जीवन दर्शन से प्रेरणा ग्रहण करने का संदेश देते हुए सभी में प्रेम, सद्भाव और भक्ति का संचार भी करता है।

भारतवर्ष में पूर्ण उत्साह के साथ इसे मनाए जाने की सुदीर्घ परंपरा रही है। इस दिन मंदिरों, घरों, सामूहिक स्थलों पर विशिष्ट धार्मिक पूजन एवं सांस्कृतिक आयोजन कराए जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के साथ-साथ उनके सखा एवं गीता-ग्रंथ का भी पूजन-अर्चन करने का इस दिन विधान है। नैवेद्य, प्रसादी, भंडारे आदि में गोदुग्ध, दही, मक्खन आदि को विशेष रूप से सम्मिलित किया जाता है।

सायंकाल से लेकर मध्यरात्रि तक भगवान श्रीकृष्ण से संबंधित मंदिरों, स्थलों की शोभा अपने शिखर पर होती है। लोग घरों से बाहर निकलकर बड़ी संख्या में मंदिरों के पूजन एवं सांस्कृतिक आयोजनों में भागीदारी करते हैं।

पूरा समाज ही भगवान श्रीकृष्ण के रंग में डूबा नजर आता है। सभी को पर्व में उत्साहपूर्वक भागीदारी करनी चाहिए, परंतु इसके पीछे के जीवन दर्शन के मर्म को भी आत्मसात् करना आवश्यक है।

इस दिन यही प्रार्थना हो कि भगवान कृष्ण की प्रेरणाएँ हमारे कर्मों में उतरकर कर्मयोग बनें, बुद्धि धर्म-कर्त्तव्य मार्ग में प्रवृत्त हो और अंत:करण निष्काम भाव से प्रेम, उत्साह और आनंद से झलक उठे। ऐसे उच्च भावों से ही जन्माष्टमी पर्व को मनाना चाहिए, जिससे इसके लौकिक और आध्यात्मिक लाभ सभी को प्राप्त हो सकें। ❑

युग परिवर्तन के आधार को यदि एक शब्द में व्यक्त करना हो तो इतना कहने भर से भी काम चल सकता है कि अगले दिनों निष्ठुर स्वार्थपरता को निरस्त करके उसके स्थान पर उदार भाव-संवेदनाओं को अंत:करण की गहराई में प्रतिष्ठित करने की, उभारने की, खोद निकालने की अथवा बाहर से सराबोर कर देने की आवश्यकता पड़ेगी।

—परमपूज्य गुरुदेव

जीवन बने उत्सव

मनुष्य का जीवन मूलतः आनंद की खोज है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसके जीवन में सुख, प्रसन्नता और उत्सव का वातावरण बना रहे, किंतु केवल उत्सवप्रिय होना ही पर्याप्त नहीं; क्योंकि विवेक और सजगता के बिना आनंद शीघ्र ही उच्छृंखलता और असंयम में परिवर्तित हो सकता है। सच्चा आनंद वही है, जो जीवन में शांति, संतुलन और प्रगति का आधार बने।

हमारे ऋषि-मुनियों ने बार-बार यह कहा है कि मनुष्य को हँसमुख रहना चाहिए, प्रसन्नचित्त रहना चाहिए, किंतु साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रसन्नता का अर्थ कभी भी प्रमाद या असावधानी नहीं होता। जब आनंद की अभिव्यक्ति जिम्मेदारियों से विमुख कर दे, तो वह जीवन के लिए बोझ बन जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि असावधानी और भोग-विलास में डूबे समाज, चाहे वे कितने भी शक्तिशाली क्यों न रहे हों, अंततः पतन का शिकार हुए।

आनंद का अर्थ केवल भोग या बाहरी ताम-झाम नहीं है। इसका वास्तविक स्वरूप आत्मिक शांति, संतोष और संयम में छिपा है। जब हम अपने कार्यों में निष्ठा और समर्पण का भाव रखते हैं, जब हमारा परिवार स्नेह और सहयोग से जुड़ा रहता है, जब हमारे जीवन में सामाजिक दायित्वों का पालन होता है—तभी आनंद स्थायी बनता है।

यदि आनंद विवेकहीन हो जाए तो वही हँसी-खुशी कलह और दुःख का कारण बन सकती है। असंयमित भोग, नशा, असावधानियाँ और अपराध की प्रवृत्तियाँ अक्सर 'आनंद की आड़' में पनपती हैं। यही कारण है कि हमारे शास्त्रों में कहा गया है—उत्सव हो, परंतु वह सजगता व जागरूकता के साथ हो।

प्रसन्नता और सजगता का यह संतुलन ही मनुष्य को सच्चा आनंद प्रदान करता है। यह संतुलन हमें अनुशासित भी बनाता है और रचनात्मक भी। व्यक्तिगत जीवन में यह स्वास्थ्य, आत्मबल और मानसिक शांति का कारण बनता है, जबकि सामाजिक जीवन में यह सहयोग, समन्वय और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।

जीवन एक निरंतर यात्रा है। इसमें सुख-दुःख, आशा-निराशा और सफलता-असफलता सभी आते हैं। यदि हम हर परिस्थिति को उत्सव की तरह स्वीकार करना सीख लें और साथ ही अपनी जिम्मेदारियों तथा मर्यादाओं के प्रति सजग बने रहें, तो निश्चित ही हमारा जीवन सार्थक, सुंदर और प्रेरणादायी बन सकता है। ❑

यज्ञात्प्राणस्थितिर्मंत्रे जपान्मंत्रस्य जाग्रतिः।
अति प्रकाशवांशचैव, मंत्रो भवति लेखनात्॥

अर्थात यज्ञ से मंत्र में प्राण आते हैं, जप से मंत्र जाग्रत होता है और लिखने से मंत्र की आत्मा प्रकाशित होती है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

प्रेतात्मा के साथ संवाद

महाराष्ट्र में भ्रमण के दौरान एक संत सोलापुर के पास एक गाँव में ठहरे हुए थे। रात्रि विश्राम कर वे तीन बजे उठकर ध्यान के लिए बैठे ही थे कि तभी उन्होंने वहाँ किसी अजीब तत्त्व की मौजूदगी महसूस की। उन्होंने नजरें उठाकर देखा तो उन्हें एक रुपहली रेखाओं से बनी मानव आकृति दिखाई पड़ी। वह आकृति जमीन से लगभग 3 फीट ऊपर हवा में स्थिर थी।

शास्त्र-पुराणों में भूत-प्रेत के विषय में उन्होंने काफी-कुछ पढ़ा और सुना था, पर आज जीवन में पहली बार उन्हें प्रेतात्मा दिखाई पड़ी थी, सो उनके मन में प्रेतात्मा को देखकर उससे संवाद करने और उसके विषय में और अधिक जानने की जिज्ञासा हुई। उसी समय प्रेतात्मा ने कहा—''मित्र, सुप्रभातम्!'' संत महोदय ने भी प्रत्युत्तर में प्रेत को 'सुप्रभातम्' कहा। फिर वह प्रेत धाराप्रवाह अँगरेजी में उनसे संवाद करने लगा और लगभग डेढ़ घंटे तक संत और प्रेतात्मा के बीच संवाद चला।

संत ने पूछा—''आपने किस हेतु मेरे सम्मुख प्रकट होने की कृपा की?'' प्रेतात्मा ने कहा—''आप जैसे संत-सज्जन पुरुष का सान्निध्य पाने के लिए।'' संत ने प्रत्युत्तर में कहा—''क्या आप मुझे बताएँगे कि आप पूर्वजन्म में क्या थे?'' प्रेत ने कहा—''मैं पूर्वजन्म में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति था और एक बड़े होटल का मालिक भी था। कुदरत की योजना के अनुसार मेरा मानव शरीर 8 वर्ष पूर्व ही नष्ट हो गया था। स्थूलशरीर नष्ट हो जाने के बाद से मैं प्रेतात्मा के रूप में भटक रहा हूँ।''

''क्या किसी भी व्यक्ति के सम्मुख आप अपनी इच्छा से प्रकट हो सकते हैं?'' संत ने पुनः प्रश्न किया। ''हाँ, हममें से जिन प्रेतात्माओं को मनुष्यों से प्रेम अथवा लगाव होता है, वे अच्छे संस्कारों और स्वभाववाले व्यक्तियों की निकटता अथवा सान्निध्य को पसंद करते हैं और जो हमसे डरते हैं और जिन लोगों में जीवन के उच्च मूल्यों के लिए कोई अभिरुचि नहीं है, उनसे हम दूर ही रहते हैं, पर हाँ! मनुष्य जीवन में जो धूर्त, शातिर और दुष्ट प्रवृत्ति के रहे हैं, मृत्यु के बाद वे दुष्ट प्रेतात्मा बन दुष्ट और शातिर प्रवृत्ति के लोगों को पीड़ित और परेशान करने में काफी रुचि लेते हैं।

''तुच्छ कोटि की प्रेतात्माओं को हुड़दंग मचाना ज्यादा अच्छा लगता है। वे मनुष्यों व प्राणियों को सताकर मजे लेती हैं। इन बातों से आप समझ सकेंगे कि पार्थिव भूमिका में जैसे मनुष्य भिन्न प्रकृति और स्वभाव के होते हैं, वैसे ही अदृश्य जगत् में भी होता है।''

''क्या सभी प्रेतात्मा बातें कर सकती हैं?''—संत ने पूछा। ''नहीं, जिन्हें मृत्यु का यथार्थ ज्ञान नहीं होता और जो मृत्यु के समय मानसिक पीड़ा से गुजरते हैं, ऐसे व्यक्तियों की वाणी के ज्ञानतंतु उनके स्थूल और सूक्ष्म वाणी के तंतुओं को बहुत हानि पहुँचाते हैं। इसके परिणामस्वरूप जब वे मृत्यु के बाद प्रेतात्मा के रूप में विहार करते हैं, तब वे अपनी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने की शक्ति गँवा बैठते हैं।

''हमारी प्रेत-सृष्टि में इस प्रकार की प्रेतात्माएँ बहुत बड़ी संख्या में हैं। उनमें से कुछ अपने नए

जीवन के साथ समाधान कर लेती हैं और उसके अनुकूल हो जाती हैं। बाद में जब उनको मानव प्राणी के साथ व्यवहार करने की इच्छा होती है, तब वे विचार-विनिमय या विचार-संक्रमण की प्रक्रिया का उपयोग करती हैं।

"हाँ, उच्च ज्ञानी प्रेतात्माओं की मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं, और वे मनुष्य की-सी मंद आवाज में बोल सकती हैं। वे विचारों की आकृति और रंग देखकर उसका अर्थ समझ सकती हैं।" "क्या आप आपके भूतकाल के सगे-संबंधियों से मिलते रहते हैं?" संत ने पुनः प्रश्न किया। प्रेतात्मा ने कहा—"मुझे उनसे मिलने की इच्छा नहीं होती है। पैसे कमाने के लिए हीनकृत्य करने वालों का सान्निध्य मुझे अच्छा नहीं लगता। हाँ, मैं मेरे तीसरे पूर्वजन्म के पुत्र के मानसिक संपर्क में हूँ। वह इस वक्त फ्रांस के पेरिस नगर में रहता है। वह भी अब वृद्ध हो गया है। उसे आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान में गहरी रुचि है।"

संत ने पुनः पूछा—"प्रेतात्माओं की सृष्टि में आपका निकटवर्ती मित्र कौन है? वह पूर्वजन्म में क्या करता था?" प्रेतात्मा ने कहा—"वह एक आगे बढ़ी हुई प्रेतात्मा है। पूर्वजन्म में वह एक ख्यातिप्राप्त विदेशी डाक्टर था। हिंदू जीवन से उनका अच्छा परिचय है। कल ही हमने भारत देश में स्वास्थ्य के प्रश्न पर चर्चा की थी। वह दृढ़ मत से कहता है कि संस्कारहीन और पिछड़ी सोच वाली नई पीढ़ियाँ देश के लिए किस काम की होंगी? नई पीढ़ी खराब जीवनशैली के कारण अस्वस्थ रहेगी तो इसका भारी नुकसान देश को ही होगा।"

अंत में संत ने पूछा—"दूसरी बार हम मिल सकेंगे क्या?" इस पर प्रेतात्मा ने कहा—"हमें इस बात को सुखद अकस्मात् होने तक भुला देना चाहिए। अब मुझे जाना चाहिए। आपने मुझे इतनी देर तक अपना सान्निध्य लाभ दिया, इसके लिए मैं आपकी आभारी हूँ। फिर से हम मिलें तब तक ईश्वर आपकी रक्षा करें।" इसी के साथ ही अस्पष्ट आकृति की प्रेतात्मा अदृश्य हो गई। इस प्रकार संत और प्रेतात्मा के बीच रोचक और रहस्यमय संवाद समाप्त हुआ। ❑

गुजरात के बोरसद क्षेत्र में डाकुओं का अत्यधिक आतंक था और उनसे रक्षा करने में पुलिस भी स्वयं को अशक्त अनुभव करती थी। त्रस्त होकर क्षेत्रवासियों ने सरदार पटेल तक अपनी फरियाद पहुँचाई। सरदार पटेल ने पुलिसवालों व गाँववालों को बुलाकर कहा—"आप दोनों मिल जाएँ तो आपकी शक्ति डाकुओं से पाँच गुना अधिक हो जाएगी। शक्ति संगठन में है। गाँव के सभी समर्थ पुरुष पुलिसवालों के साथ दल बनाकर गाँव में पहरा दें और आक्रमण होने पर भागने के बजाय डटकर मुकाबला करें।" गाँववालों ने ऐसा ही किया, फिर कभी उनके गाँव पर डाकुओं का हमला नहीं हुआ। जो अपनी रक्षा में समर्थ हो, उसे किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं होती।

प्रतिकूलता को बनाएँ जीवन-उत्कर्ष की सीढ़ी

मन को ढर्रे पर चलना पसंद है, यथास्थिति में ही बने रहना उसका स्वभाव है। जीवन में बड़े परिवर्तन के लिए यह सहज रूप में तैयार नहीं होता। जीवन में किसी भी कारण विषम परिस्थितियाँ आ जाएँ, जो उसके अनुकूल नहीं हैं, तो वे मन को विचलित कर देती हैं।

यदि व्यक्ति इनके लिए समुचित रूप से तैयार नहीं है, तो ऐसे में वह इनका संतुलित प्रत्युत्तर नहीं दे पाता और वह इनके हलके से भी प्रहार से बिखर-बिफर एवं ढह जाता है। ऐसे में मन:स्थिति को परिस्थिति के साथ तालमेल बिठाने व परिवर्तन को अंगीकार करने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता रहती है। ऐसी परिस्थिति आने पर व्यक्ति यदि थोड़े से भी धैर्य एवं सूझ के साथ काम करता है, तो वह प्रतिकूलताओं को अपने पक्ष में कर सकता है और उन्हें प्रगति-पथ की सीढ़ी बना सकता है।

यही इन आभासित विषम परिस्थितियों का उपहार भी रहता है। जब हम विषम परिस्थितियों व इसके प्रवाह को अपनी नियति का हिस्सा मानते हैं और इनका सामना करने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो इनके पीछे निहित संदेश प्रकट होना प्रारंभ होते हैं; क्योंकि तब हम इन्हें अपने कर्म के साथ जोड़कर देखना प्रारंभ करते हैं और स्वयं का गहन विश्लेषण करते हुए, इनकी तह में उतरकर जीवन के अर्थपूर्ण यथार्थ को समझना प्रारंभ करते हैं।

जब तक हम इनके प्रति सकारात्मक भाव नहीं जगा पाते, तब तक ये परिस्थितियाँ हमारे लिए आंतरिक अशांति एवं उद्विग्नता का कारण बनती हैं। ऐसे में व्यक्ति इन प्रतिकूलताओं के लिए या तो परिस्थितियों को दोषी ठहराता है या फिर किसी दूसरे व्यक्ति के सर पर इनका ठीकरा फोड़ता है या फिर भाग्य या ईश्वर को कोसने लगता है।

परिणामस्वरूप व्यक्ति मन-ही-मन कुड़-कुड़ाता है और उसे समस्या का समाधान नहीं मिल पाता। ऐसे में व्यक्ति की सारी जीवन-ऊर्जा कुकल्पनाओं एवं कुविचारों के कुचक्र में उलझ जाती है और वह जीवन-लक्ष्य से वंचित अनुभव करता है; जबकि इन परिस्थितियों का सूझ व धैर्य के साथ सामना करने पर ये ही अभिशाप के बजाय वरदान बन जाती हैं और आंतरिक क्षमताओं के जागरण और जीवन उत्कर्ष का माध्यम बन जाती हैं।

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ताऽनीनाम्।

—अथर्व॰ 7/115/4

अर्थात पुण्य की कमाई मेरे घर की शोभा बढ़ाए, पाप की कमाई मैंने नष्ट कर दी है।

इसी के साथ जीवन के जटिल कर्मों का क्षय होता है और सौभाग्य का सूर्योदय होता है। अत: जब विषम परिस्थिति का सामना अपरिहार्य हो जाए तो इनका वीरता एवं धीरता के साथ सामना करें। इनमें छिपे संदेश को समझने का प्रयास करें। इन्हें अपने ही कर्म का परिपाक, ईश्वर की कृपा-विधान का हिस्सा मानकर चलें।

ऐसे में ये ही प्रतिकूलताएँ उत्कर्ष का वरदान बनेंगी, आत्मशुद्धि के साथ आत्मविकास का साधन बनेंगी और जीवन में नई संभावनाओं का द्वार खोलेंगी। ❑

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

स्मरण शक्ति

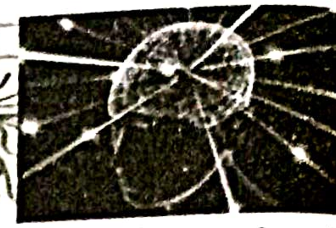

स्मरण शक्ति मनुष्य के जीवन का अमूल्य रत्न है। यह केवल मस्तिष्क की क्षमता नहीं, बल्कि चेतना का वह आलोक है, जो हमारे विचारों, अनुभवों और संस्कारों को दिशा देती है। स्मरण के बिना न तो ज्ञान स्थिर रह सकता है, न अनुभव का कोई अर्थ रह जाता है। स्मरण का क्षीण होना, जीवन के प्रकाश का मंद पड़ जाना है।

जब मनुष्य अपने जीवन में तनाव, चिंता या अशांति को स्थान देता है, तो स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है। मन की अशुद्धि, असंयम, आलस्य और असंतुलित जीवनचर्या स्मरण को दुर्बल बनाते हैं। निरंतर चिंता, भय और असंतोष से मस्तिष्क की शक्ति क्षीण होती जाती है।

यह ठीक वैसा ही है, जैसे धूल या धुआँ दर्पण पर जम जाए—प्रतिबिंब तब तक धुँधला रहेगा, जब तक दर्पण को स्वच्छ न कर लिया जाए। स्मरण शक्ति के विकास के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने भीतर की स्वच्छता बनाए रखे। सात्त्विक आहार, नियमित दिनचर्या, पर्याप्त विश्राम और मानसिक शांति इसके पोषण के आधार हैं।

योग, ध्यान और प्राणायाम जैसे साधन मस्तिष्क की तरंगों को संतुलित करते हैं, जिससे स्मरण की गहराई बढ़ती है। विचारों की पवित्रता स्मरण की दीर्घायु है। जब मन सद्भावनाओं से भरा होता है, तब प्रत्येक अनुभव चेतना में स्थायी छाप छोड़ता है। क्रोध, ईर्ष्या, लोभ या असंयम स्मरण को क्षीण करते हैं। इसके विपरीत, प्रेम, श्रद्धा और सच्चाई जैसी भावनाएँ उसे पुष्ट करती हैं।

मनुष्य की स्मृति केवल पढ़ी या सुनी बातों तक सीमित नहीं होती, बल्कि वह जीवन की घटनाओं को भावनात्मक रूप में अंकित करती है। अतः यदि हम हर अनुभव को पूर्ण सजगता से जिएँ, तो हमारी स्मरण शक्ति स्वतः गहन होती चली जाती है।

ध्यान और जप जैसी साधनाएँ चेतना को एकाग्र करती हैं, और यही एकाग्रता स्मरण की सबसे सशक्त भूमि है। स्मरण शक्ति का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है—आत्मिक शांति। जब मनुष्य का अंतःकरण शुद्ध होता है, तब उसकी स्मरण शक्ति दैवी बन जाती है।

ऐसे व्यक्ति की स्मृति केवल सांसारिक बातों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उसमें आत्मानुभूति का प्रकाश झलकने लगता है। वह भूलने का शिकार नहीं होता, क्योंकि उसके विचार सच्चे और स्थिर रहते हैं। जो व्यक्ति अपने आदर्शों, अपने लक्ष्य और अपने कर्त्तव्यों का निरंतर स्मरण रखता है, उसका जीवन अनुशासन और दिशा से परिपूर्ण होता है। जो यह भूल जाता है कि वह क्यों जी रहा है, उसका जीवन दिशाहीन हो जाता है।

स्मरण केवल मानसिक क्रिया नहीं, यह आत्मिक जागरण की प्रक्रिया है। जब मनुष्य का मन श्रद्धा और समर्पण से भरा होता है, तब स्मरण की शक्ति चमत्कारिक रूप से बढ़ जाती है। श्रद्धा ही स्मृति का संस्कार है। जीवन की कठिनाइयाँ, संघर्ष और परिस्थितियाँ तब बाधा नहीं बनतीं, बल्कि अनुभव के अमृत में रूपांतरित हो जाती हैं। भूलने की प्रवृत्ति अक्सर तब बढ़ती है, जब हम जीवन को सतही दृष्टि से जीते हैं।

जो कुछ हम पढ़ते या सुनते हैं, यदि उसे भावनात्मक रूप से अनुभव न करें तो वह चेतना में स्थिर नहीं होता। स्मरण शक्ति को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है कि हम प्रत्येक अनुभव को हृदय से ग्रहण करें, उसमें अर्थ खोजें, उसे आत्मसात् करें। आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो स्मरण ही ध्यान का आरंभ है।

ध्यान की अवस्था में मन पूर्णतः वर्तमान में स्थित होता है, और यही स्थिति स्मरण को दीर्घ और स्थायी बनाती है। जब मनुष्य अपने भीतर के दिव्य स्वरूप को स्मरण करता है, तब उसकी समस्त इंद्रियाँ संतुलित हो जाती हैं, और चेतना का प्रवाह निर्मल नदी की तरह शांत हो जाता है। इसलिए स्मरण शक्ति के निवारण के लिए केवल दवाइयाँ या बाह्य उपचार पर्याप्त नहीं हैं।

इसका वास्तविक उपचार है आत्मिक संतुलन, भावनात्मक शुद्धता और जीवन की सरलता। स्मरण को तीव्र बनाने का उपाय बाहर नहीं, भीतर है। स्मरण शक्ति के ह्रास का उपचार किसी औषधि से नहीं, बल्कि सतत आत्मसाधना से संभव है।

जो मनुष्य ईश्वर का स्मरण रखता है, जो अपने कर्त्तव्य और प्रेम का भाव नहीं भूलता, उसकी स्मरण शक्ति कभी क्षीण नहीं होती। उसके मन में जो कुछ भी अंकित होता है, वह स्थायी होता है, क्योंकि वह मन शुद्ध और हृदय निर्मल होता है।

स्मरण की रक्षा करना अपने अस्तित्व की रक्षा करना है। यह केवल याद रखने की क्षमता नहीं, बल्कि आत्मसाक्षात्कार की पहली सीढ़ी है। जो स्मरण में स्थिर रहता है, वह चेतना के उच्चतम आयामों को छू सकता है। स्मरण को साधना बना लें, तो जीवन स्वयं एक दीर्घ, प्रकाशित स्मृति बन जाता है—जिसमें विस्मरण का अंधकार कभी प्रवेश नहीं कर पाता।

स्मरण का अर्थ केवल अतीत को याद रखना नहीं, बल्कि वर्तमान में चेतना को जीवित रखना है। जो व्यक्ति ईश्वर, कर्त्तव्य और करुणा का निरंतर स्मरण करता है, वह कभी दुर्बल नहीं होता। स्मरण का निरंतर प्रवाह ही भक्ति है और यही योग का सार भी है।

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

—गीता 8/7

अर्थात—हे अर्जुन! तू हर समय मेरा स्मरण करता हुआ अपना कर्त्तव्य करता रह। जब तेरा मन और बुद्धि मुझमें समर्पित हो जाएगी, तब निश्चय ही तू मुझमें ही स्थित होगा।

स्मरण ही साधना का आरंभ है, और साधना ही स्मरण का विस्तार। जब ये दोनों एक हो जाएँ तो मनुष्य की चेतना दिव्य हो जाती है और जीवन स्वयं एक पवित्र ग्रंथ बन जाता है, जिसमें हर पृष्ठ ईश्वर के स्मरण से आलोकित रहता है। ❑

ऋषि सुदीर्घ से शिष्यों ने प्रश्न किया—"गुरुदेव! लगभग सभी नदियाँ पूजित हैं, पर सागरों को ऐसा सम्मान मिलता दिखाई नहीं पड़ता, ऐसा क्यों?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"प्रेम और सम्मान उन्हें मिलता है, जो वितरण करते हैं, संग्रह नहीं। नदी सब कुछ खोते हुए भी बहती जाती है; जबकि सागर आप्लावित होते रहते हैं। जो देते हैं, वे ही पाते हैं।"

शिष्यों को दान की महिमा ज्ञात हो गई।

युग ज्योति : वंदनीया माताजी जन्मशताब्दी लेखमाला-1

महान तपस्वी नारियों की परंपरा की ध्वजवाहिका वंदनीया माताजी

भारतीय संस्कृति के विराट इतिहास में नारी को सदैव शक्ति, श्रद्धा, करुणा और तप की साकार प्रतिमा माना गया है। वैदिक युग से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय नारी ने अपने त्याग, साधना और आत्मबल के द्वारा समाज को दिशा प्रदान की है। गार्गी, मैत्रेयी, अनसूया, अरुंधती, मदालसा, मीरा और अहिल्याबाई जैसी असंख्य तपस्विनी नारियों ने भारतीय संस्कृति के आकाश को आलोकित किया है।

आधुनिक युग में यदि किसी ने इस महान तपस्विनी परंपरा को पुनर्जीवित किया और उसे जन-जन तक पहुँचाया, तो वे थीं—वंदनीया माताजी। वे केवल अखिल विश्व गायत्री परिवार की संस्थापिका ही नहीं थीं, अपितु वे भारतीय नारी की तपश्चर्या, मातृत्व और आध्यात्मिक चेतना की जीवंत प्रतिमूर्ति थीं। उनका संपूर्ण जीवन गायत्री-उपासना, आत्मसमर्पण, त्याग और लोक-मंगल की साधना का अद्भुत उदाहरण है।

वंदनीया माताजी का जीवन इस सत्य का प्रमाण है कि तप केवल वन, पर्वत अथवा हिमालय की गुफाओं में ही नहीं होता, बल्कि गृहस्थ जीवन में रहकर, परिवार और समाज के मध्य रहते हुए भी सर्वोच्च कोटि की तपश्चर्या की जा सकती है। उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को युगधर्म के निर्वहन, मानवता के उत्थान और दिव्य संस्कृति के पुनर्जागरण के लिए सपर्पित कर दिया।

उनका संपूर्ण जीवन एक अखंड तपयज्ञ था, जिसमें उन्होंने अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, सुख-सुविधाओं और यहाँ तक कि अपने व्यक्तित्व का भी पूर्ण विसर्जन कर दिया।

वंदनीया माताजी की साधना का मूल आधार गायत्री-उपासना थी। वे गायत्री को केवल एक मंत्र अथवा देवी के रूप में नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक दिव्य पद्धति के रूप में देखती थीं। उनके लिए गायत्री का अर्थ था—विचारों की पवित्रता, भावनाओं की उदात्तता, कर्त्तव्यनिष्ठा, सेवा और आत्मविकास। यही कारण था कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व से गायत्री चेतना का प्रकाश प्रस्फुटित होता था।

वे स्वयं नियमित जप, ध्यान, उपासना और स्वाध्याय करती थीं तथा प्रत्येक साधक को यह प्रेरणा देती थीं कि गायत्री-साधना का वास्तविक उद्देश्य व्यक्तित्व का परिष्कार और जीवन का देवत्वीकरण है। वे कहा करती थीं कि गायत्री उपासना का सार केवल जप में नहीं, बल्कि जीवन को देवत्वमय बनाने में निहित है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव की तपश्चर्या और हिमालयीन साधना के पीछे जो मौन, दिव्य और अविरल शक्ति कार्यरत थी, वे वंदनीया माताजी ही थीं।

पूज्य गुरुदेव जब अपने कठिन तप-अनुष्ठानों और हिमालय प्रवासों में संलग्न रहते थे, तब मिशन की संपूर्ण व्यवस्था, परिवार का संचालन तथा आने-जाने वाले असंख्य परिजनों की देख-भाल का उत्तरदायित्व माताजी पर आ जाता था। उन्होंने इन समस्त दायित्वों का निर्वहन अत्यंत सहजता, धैर्य और प्रसन्नता के साथ किया। यह साधारण कार्य नहीं था। यह एक महान तपस्विनी की मौन-साधना थी, जो बिना किसी प्रदर्शन के निरंतर चलती रही। मथुरा स्थित अखण्ड ज्योति संस्थान के प्रारंभिक दिनों का एक अत्यंत प्रेरक संस्मरण है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

उन दिनों आर्थिक संसाधन अत्यंत सीमित थे। अनेक बार ऐसी स्थिति आती थी, जब घर में भोजन की भी पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती थी, किंतु माताजी ने कभी किसी अतिथि, साधक या कार्यकर्त्ता को निराश नहीं लौटाया। वे स्वयं अल्प भोजन कर लेतीं, परंतु आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्नेहपूर्वक भोजन कराना अपना धर्म मानती थीं।

कई अवसरों पर उन्होंने अपने निजी आभूषणों और आवश्यक वस्तुओं तक का त्याग मिशन के कार्यों के लिए कर दिया। उनके लिए मिशन ही उनका परिवार था और समस्त परिजन उनके अपने बच्चे थे। त्याग और सेवा का यह भाव उनकी तपश्चर्या की प्रखरता को प्रकट करता है। वंदनीया माताजी की तपश्चर्या का एक अत्यंत विलक्षण पक्ष ऐसा भी था, जिसके विषय में बहुत कम लोग जानते हैं।

अश्वमेध यज्ञों की विराट शृंखला के दिनों में, प्रवास और सार्वजनिक कार्यक्रमों के समय को छोड़कर, वे अधिकांश समय निरंतर मौन तप में निमग्न रहा करती थीं। अनेक निकटस्थ परिजनों ने अनुभव किया कि उन दिनों वे अत्यल्प बोलती थीं और अपना अधिकांश समय गहन अंतर्मुखी साधना में व्यतीत करती थीं। जब किसी ने उनके इस मौन-साधना के रहस्य के विषय में जानना चाहा, तो वे अत्यंत सहज भाव से केवल इतना कहती थीं—उस कक्षा के प्रकाश को धरती पर लाने के लिए मौन-साधना अनिवार्य है।

जब कोई जिज्ञासु इस विषय में अधिक पूछने का साहस करता, तो वे संकेतों में कहतीं—जिस प्रकार भगवान शिव ने गंगा को धरती पर अवतरित करने के लिए अपनी जटाएँ खोली थीं, कुछ वैसा ही एक दिव्य प्रवाह इन दिनों अंतरिक्ष जगत् में भी घटित हो रहा है।

यह कथन उनके तप के उस सूक्ष्म आयाम की ओर संकेत करता है, जिसके माध्यम से वे केवल व्यक्तिगत साधना ही नहीं कर रही थीं, बल्कि युग-परिवर्तन के लिए आवश्यक दिव्य चेतना के अवतरण हेतु स्वयं को एक माध्यम के रूप में प्रस्तुत कर रही थीं। वस्तुतः यह मौन तप उनके द्वारा संपन्न किए जा रहे उस महान आध्यात्मिक पुरुषार्थ का परिचायक था, जिसकी अनुभूति केवल संवेदनशील साधक ही कर सकते थे।

शांतिकुंज के प्रारंभिक दिनों में वहाँ न तो पर्याप्त सुविधाएँ थीं और न ही संसाधन। कठिन परिस्थितियों में भी माताजी स्वयं कार्यकर्त्ताओं के साथ श्रम करती थीं। वे दिनभर व्यवस्था सँभालतीं, परिजनों की समस्याएँ सुनतीं, उन्हें मार्गदर्शन देतीं और रात्रि में अपनी नियमित साधना भी करती थीं।

अनेक वरिष्ठ परिजन बताते हैं कि माताजी अत्यंत कम विश्राम करती थीं, किंतु उनके मुखमंडल पर सदैव अलौकिक शांति और प्रसन्नता बनी रहती थी। उन्होंने कभी परिस्थितियों को अपने उत्साह पर हावी नहीं होने दिया। उनका विश्वास था कि जहाँ गायत्री की कृपा और गुरुसत्ता का संरक्षण हो, वहाँ कोई भी कठिनाई स्थायी नहीं रह सकती।

वंदनीया माताजी की तपशक्ति का अनुभव असंख्य साधकों ने किया है। अनेक लोग अपनी पारिवारिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक समस्याओं को लेकर उनके पास आते थे। वे सभी को अत्यंत आत्मीयता से सुनतीं और उनकी समस्याओं का समाधान केवल शब्दों से ही नहीं, बल्कि अपनी आध्यात्मिक शक्ति से भी करती थीं।

अनेक परिजनों का अनुभव है कि माताजी के समीप पहुँचते ही मन की व्याकुलता स्वतः शांत हो जाती थी। उनके स्नेहिल स्पर्श और करुणामयी

दृष्टि में एक ऐसी दिव्य ऊर्जा थी, जो निराश व्यक्ति के भीतर भी आशा और साहस का संचार कर देती थी।

एक साधिका का संस्मरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह जीवन की कठिनाइयों से घिरकर अत्यंत निराश अवस्था में माताजी के पास पहुँची। उसने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा—''माताजी, अब मुझसे कुछ नहीं होता। मैं पूरी तरह टूट चुकी हूँ।''

माताजी ने उसे समीप बिठाया, उसके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ रखा और कहा—''बेटी, गायत्री की साधिका कभी टूटती नहीं। कठिनाइयाँ हमें पराजित करने नहीं, बल्कि हमें मजबूत बनाने आती हैं। जप बढ़ाओ, ईश्वर पर विश्वास रखो और सेवा में लग जाओ। सब ठीक हो जाएगा।'' बाद में उस साधिका ने स्वीकार किया कि माताजी के इन शब्दों ने उसके जीवन को नई दिशा प्रदान की।

वंदनीया माताजी के जीवन का सबसे बड़ा तप था—पूर्ण आत्मसमर्पण। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को गुरुसत्ता में इस प्रकार विलीन कर दिया था कि उनके लिए अपना कोई पृथक अस्तित्व शेष नहीं रहा। वे बार-बार यही कहती थीं कि मैं कुछ नहीं हूँ, सब गुरुदेव का है। यह कथन केवल विनम्रता का प्रदर्शन नहीं था, बल्कि उनकी साधना की सर्वोच्च अवस्था का परिचायक था। आत्मविसर्जन की यह स्थिति भारतीय अध्यात्म में अत्यंत दुर्लभ मानी गई है। उन्होंने स्वयं को पूर्णतः युगकार्य के लिए समर्पित कर दिया और अंत तक उसी भाव में जीती रहीं।

वंदनीया माताजी ने नारी जागरण के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व कार्य किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि नारी यदि अपनी अंतर्निहित शक्तियों को पहचान ले, तो वह परिवार ही नहीं, संपूर्ण समाज का रूपांतर कर सकती है।

उन्होंने लाखों महिलाओं को गायत्री-उपासना, स्वाध्याय, संस्कार, सेवा और आत्मनिर्माण के माध्यम से आत्मविश्वासी, स्वावलंबी और समाजोपयोगी बनने की प्रेरणा दी। उनके स्नेह, मार्गदर्शन और आध्यात्मिक संरक्षण ने असंख्य महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किया।

वंदनीया माताजी का संपूर्ण जीवन हमें यह सिखाता है कि तप का वास्तविक स्वरूप आत्मशोधन, सेवा, त्याग और प्रेम में निहित है। उन्होंने दिखाया कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी एक व्यक्ति ऋषित्व के उच्चतम शिखर को स्पर्श कर सकता है। उनकी गायत्री-साधना केवल व्यक्तिगत मोक्ष की साधना नहीं थी, बल्कि समष्टिगत कल्याण की साधना थी। इसी कारण उनका जीवन आज भी लाखों-करोड़ों लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

उपासना, साधना, आराधना के तीन उपायों से ईश्वर, जीवसत्ता में प्रवेश करता है तथा मनुष्य को देवोपम चिंतन-चरित्र विनिर्मित करने की प्रेरणा देता है।

वास्तव में, वंदनीया माताजी आधुनिक युग की उन महान तपस्विनी नारियों में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने भारतीय तप-परंपरा की गौरवशाली धारा को न केवल अक्षुण्ण रखा, बल्कि उसे विश्वव्यापी विस्तार भी प्रदान किया। वे नारी शक्ति, मातृत्व, साधना और आत्मसमर्पण की साक्षात् प्रतिमा थीं। भारतीय संस्कृति की महान तपस्विनी नारियों की परंपरा में उनका स्थान सदैव अत्यंत ऊँचा और वंदनीय रहेगा। उनका जीवन आने वाली पीढ़ियों को यह संदेश देता रहेगा कि गायत्री-उपासना आलोकित, तप से परिष्कृत और सेवा से समर्पित जीवन ही वास्तव में मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। ❑

अटल है ईश विधान

पुनर्जन्म को लेकर कई घटनाएँ समय-समय पर हमें सुनने, पढ़ने और देखने को मिलती हैं। ऐसी घटनाएँ हमें अचंभित भी करती हैं और सोचने को मजबूर भी। पुनर्जन्म की एक ऐसी ही घटना वर्षों पूर्व गुजरात में घटी थी। गोविंद सिंह एक कुशल कारीगर था, पर अपने दुष्ट व्यवहार के कारण वह कहीं भी नौकरी करते हुए लंबे समय तक टिक नहीं पाता था।

रोजगार नहीं मिलने के कारण उसकी माली हालत खराब हो गई और वह स्वयं का कोई रोजगार खड़ा करने पर विचार करने लगा। वैसा करने के लिए काफी धन चाहिए था, जो उसके पास नहीं था। अंततः उसने मुनाफे का लालच देकर अपने मित्र धनपाल को अपनी योजना में शामिल कर लिया।

धनपाल के पास अच्छी-खासी पैतृक संपत्ति थी, पर वह आलसी और अकर्मण्य था। उसने भी सोचा कि औजारों के उत्पादन का कारखाना खोलने में वह गोविंद सिंह की मदद करेगा और बदले में मुनाफे की अच्छी खासी रकम वह गोविंद सिंह से पाएगा। दुष्ट और धूर्त गोविंद सिंह ने कारखाने हेतु जमीन, यंत्र और अन्य साजो-सामान खरीदने के बहाने भोले-भाले धनपाल से पाँच-छह बार मोटी रकम हथिया ली। उसकी मुराद तो धनपाल की पूरी संपत्ति हड़प लेने की थी।

योजनानुसार गोविंद सिंह गुजरात के सूरत शहर के पास के एक गाँव में कारखाने के लिए जमीन खोजने पहुँच गया और तत्पश्चात एक दिन शाम को वह धनपाल के यहाँ पहुँच गया और उसे जमीन खरीदने हेतु पैसे के साथ अपने साथ चलने को राजी कर लिया।

धनपाल ने उसी समय गोविंद सिंह को काफी पैसे दे दिए और साथ ही एक थैले में मोटी रकम स्वयं लेकर गोविंद सिंह के साथ चल दिया। गोविंद सिंह ने जमीन खरीदने के लिए धनपाल से प्राप्त पैसे को कहीं गुप्त स्थान पर छिपा दिया। उसने यह बात अपनी पत्नी को भी नहीं बताई।

उसको लगा कि धनपाल जैसे भोले व्यक्ति को ठगने में कोई विशेष चालाकी की जरूरत नहीं है। उसे मैं यह आसानी से समझा दूँगा कि उसने जमीन खरीदने के लिए जो रकम हमें दी थी, वह कहीं गुम हो गई है, तो वह मान जाएगा और अपने साथ लाई रकम को वह फिर से मुझे दे देगा।

दूसरे दिन वे दोनों जमीन मालिक के दलाल के पास पहुँचे और जमीन के लिए दलाल को पैसे देने के बजाय गोविंद सिंह उसे इधर-उधर की बातों में घुमाता रहा, क्योंकि उसे जमीन खरीदनी नहीं थी, बल्कि जमीन खरीदने के नाम पर उसे धनपाल से और पैसे ठगने थे।

आखिर में योजनानुसार उसने धनपाल को यह समझा दिया कि दलाल जमीन के लिए ज्यादा पैसे माँग रहा है, अस्तु वह कहीं और दूसरी जमीन देखेगा। वहाँ से दोनों घर वापस आने के लिए रेलगाड़ी में सवार हुए। गाड़ी में काफी भीड़ थी, अतः वे दोनों दरवाजे के पास ही खड़े होकर सफर करने लगे।

धनपाल के दिमाग में कारखाना शुरू करने के विषय में कई प्रश्न थे, उन्हें वो गोविंद सिंह से

करता रहा, पर धूर्त और शातिर गोविंद सिंह धनपाल से बोला—''देखो मित्र! हकीकत यह है कि हमारी योजना को साकार होने में अभी कुछ और वक्त लगेगा; क्योंकि आपने पिछले दिनों जमीन खरीदने के लिए जो पैसे दिए थे, वो कहीं गुम हो गए हैं।''

यह सुनते ही धनपाल हक्का-बक्का रह गया। इतनी बड़ी रकम गुम होने की बात सुनकर उसका शरीर काँपने लगा और गाड़ी के दरवाजे पर हैंडल को पकड़े उसके हाथ काँपने के कारण अचानक छूट गए और वह तेज गति से जा रही गाड़ी से नीचे गिर गया। उस समय गाड़ी भरूच के पास के नर्मदा नदी के पुल पर से गुजर रही थी और वह उसकी तेज धारा में बह गया।

गोविंद सिंह को कल्पना भी नहीं थी कि उसकी बात का धनपाल पर ऐसा असर होगा। वह ऐसा चाहता भी नहीं था। उसने धनपाल के पैसे वाले बैग को अपने पास छिपा लिया। गाड़ी स्टेशन पर रुकी। पुलिस को उसने सूचना दी कि किस प्रकार उसका मित्र गाड़ी से गिरकर नदी की धारा में बह गया। पुलिस को भी गोविंद सिंह पर कोई शक नहीं हुआ कि धनपाल के गिरने में इसका कोई हाथ है।

चालाक गोविंद सिंह पुलिस की गिरफ्त से भी बच गया और अगले दिन अपने गाँव वापस आ गया और सीधा धनपाल के घर गया। उसने बहुत दुःखी होने का नाटक करते हुए धनपाल की पत्नी को पूरा घटना-क्रम सुनाया। यह सुनकर धनपाल की पत्नी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। गोविंद सिंह की पत्नी और पड़ोस की अन्य महिलाओं ने उसे दिलासा दी।

तीसरे दिन की मध्यरात्रि में धनपाल गोविंद सिंह के सपने में आया और उसे डाँटने लगा—मेरी आत्मा कहती है कि तूने जान-बूझकर मेरे साथ छल किया और तुम्हारे कारण ही गाड़ी से गिरकर मेरी मौत हुई। तुम्हारे कारण ही मेरी पत्नी और बच्चे अनाथ बन गए। तुमने उन्हें उन सुख-सुविधाओं से वंचित कर दिया, जो मैं उन्हें देने वाला था, पर गोविंद सिंह तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि तुम्हारे इस घृणित विश्वासघात का बदला तुम्हें चुकाना ही पड़ेगा, और तुम्हें भी तड़पना पड़ेगा।

गोविंद सिंह जाग गया और काँपने लगा। गोविंद सिंह ने दबाई हुई रकम को खरच करने की लालसा को कष्टपूर्वक दबाए रखा और लोगों की नजर में दुःखी और बेरोजगार होने का नाटक करता रहा। फिर बाद में चतुराईपूर्वक ऐंठी हुई रकम को जगह-जगह संपत्ति बनाने व धंधे में ऐसे लगाता रहा, जिससे किसी को कोई शक न हो।

वह बीच-बीच में धनपाल की पत्नी के पास जाकर उसे कुछ मदद भी कर दिया करता, जिससे की धनपाल की मृत्यु और उसकी गायब हुई नगद राशि के संबंध में लोगों को उसके ऊपर कोई शक न हो। समय बीतता रहा। शादी के 16 वर्षों बाद गोविंद सिंह को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। उसका बच्चा तीन वर्ष का हो चुका था।

एक दिन वह बिस्तर पर बैठे अपने बच्चे को दुलार रहा था कि तभी उसने देखा कि वह बालक गुस्से से तमतमा उठा, उसका चेहरा लाल हो गया और उसने गोविंद सिंह को धिक्कारते हुए कहा—''रे दुष्ट! पैसों के लालच में तुमने बड़ा ही अधम और घृणित काम किया है। विश्वास, प्रेम और मैत्री का ख्याल भी तुमने नहीं रखा। मैं धिक्कार देता हूँ तुम्हारे ऐसे जीवन को।'' इतना बोलकर वह बालक स्वस्थ और पूर्ववत् सामान्य हो गया।

धनपाल को स्वप्न में देखना और उसके द्वारा दिए गए धिक्कार और इस बालक के धिक्कार में पूरी समानता थी, अस्तु गोविंद सिंह को समझ में आ गया कि लगता है धनपाल की आत्मा ने ही मेरे पुत्र के रूप में जन्म लिया है। वह उस बच्चे से सावधान रहने लगा। उसे यह डर लगने लगा कि

यदि इसने दूसरों के सामने ये गुप्त बातें बोल दीं तो धनपाल की पत्नी और अन्य लोगों को भी उसके प्रति शक होने लगेगा और बात पुलिस तक पहुँच गई तो उसे सजा भी होगी और समाज के लोग भी उससे घृणा करने लगेंगे।

जब कभी वह बालक उसे धिक्कारने की स्थिति में आता—उस समय वह उसकी पिटाई करने लगता, जिससे की वह सामान्य स्थिति में आ जाए और उसकी पोल नहीं खोल सके।

एक दिन वह बालक अपनी माँ के साथ बैठा था और अपनी माँ को बहन कहकर पुकारने लगा और बोला—"बहन! मैं पूर्वजन्म में धनपाल था, तुम्हारे पति ने मुझे धोखे से मौत के मुँह में धकेल दिया था। उसने मेरा सब कुछ बरबाद कर दिया, जिसके कारण मेरी पत्नी और बच्चों को नाहक कष्ट उठाने पड़ रहे हैं।"

अब गोविंद सिंह की पत्नी को सब समझ में आने लगा। गोविंद सिंह के घर में एक सिद्ध महात्मा आया करते थे। संयोगवश वे कहीं से घूमते हुए उसके घर पधारे। गोविंद सिंह की पत्नी ने अपने पुत्र के विषय में उन्हें सारी बातें बताईं।

स्वामी जी ने कहा, आपने जो कुछ कहा है, उससे यह स्पष्ट है कि धनपाल के लापता होने में गोविंद सिंह का ही हाथ है। या तो धनपाल की आत्मा आपके पुत्र के शरीर में प्रवेश करती है या गोविंद सिंह के अन्याय का बदला लेने के लिए स्वर्गीय धनपाल ने आपके यहाँ पुत्ररूप में पुनर्जन्म लिया है। उसी समय गोविंद सिंह घर आए।

स्वामी जी ने उस बच्चे को अपने पास बुलाया तभी अपने पिता को देखते हुए वह बालक बोल उठा—"गोविंद सिंह! तुम यह स्पष्ट समझ लो कि मैं तुम्हारा परोपकारी मित्र धनपाल ही हूँ, जिसे तुमने धोखे से मौत के मुँह में धकेल दिया। तुम्हें तुम्हारा दुष्कृत्य याद आता है कि नहीं? तुम्हें उसके लिए अपने आप पर शरम आनी चाहिए।" वहाँ बैठे स्वामी जी उसे देखते ही रह गए।

उन्हें यह पक्का यकीन हो गया कि धनपाल का ही इस बालक के रूप में पुनर्जन्म हुआ है या धनपाल की आत्मा इस बालक के शरीर में प्रवेश करती है, जिसके कारण यह बालक ऐसी बातें करने लगता है। स्वामी जी ने बड़े प्यार से गोविंद सिंह की पीठ पर हाथ फेरा और कहा—"गोविंद! मुझसे तो सच मत छिपाओ। स्वामी जी की बातें सुनते ही गोविंद सिंह की आँखें भर आईं, उसके सूखे ओंठ बोलने के लिए काँप रहे थे। उसने स्वामी जी को सारी बातें बता दीं।

स्वामी जी ने उसे आदेश दिया कि तुम्हारे ये पापकर्म तुम्हारा तब तक पीछा करते रहेंगे, जब तक तुम उनसे मुक्त न हो जाओ। वे आगे बोले—"गोविंद! तुम धनपाल से ठगे हुए सारे पैसे ब्याज सहित वापस कर दो।" गोविंद भी प्रायश्चित करने के लिए स्वामी जी के आदेश का पालन करने को तैयार हो गया। मेरे पति की मौत के लिए परोक्ष रूप से वह व्यक्ति जिम्मेदार है, जो उनका सबसे प्रिय मित्र हुआ करता था और जिसकी उन्होंने काफी मदद की, यह जानकर धनपाल की पत्नी को गहरा आघात लग सकता था। इस संभावना को निरस्त करने के शुभ हेतु स्वामी जी ने एक विवेकपूर्ण हल सोच निकाला।

उन्होंने कहा कि धनपाल की पत्नी को वह रकम गोविंद नहीं, बल्कि किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा भेजी जाए। स्वामी जी ने अपने एक भक्त को गोविंद से सारी रकम लेकर धनपाल की पत्नी को देने भेजा और धनपाल की पत्नी के यह पूछने पर कि यह पैसे मुझे आप क्यों दे रहे हैं, स्वामी जी के भक्त ने कहा कि मेरे गुरुजी ने आपके बड़े ससुर से कभी काफी रकम उधार ली थी—उसे ही मेरे हाथों आपको देने भेजा है। इस प्रकार कई किस्तों में गोविंद सिंह ने स्वामी जी के शिष्य के हाथों पूरे

पैसे धनपाल की पत्नी को ब्याजसहित वापस कर दिए।

तत्पश्चात आश्चर्य की बात तो यह हुई कि गोविंद सिंह के पुत्र के चेहरे पर समाधान की आभा चमक उठी और वह तपाक से ऊँचे स्वर में बोला—"ठीक है दोस्त! मुझे खुशी है कि तुमने अपने किए अपराध को स्वीकार करके मेरी पत्नी को रकम वापस कर दी है। स्वामी जी ने समय रहते सफल मध्यस्थता की, इसलिए मैं भी अपने अंत:करण से तुम्हें क्षमा करता हूँ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। गोविंद सिंह अपने सच्चे मित्र धनपाल की आत्मा के रूप में पुनर्जन्म लिए अपने पुत्र के चरणों में गिर पड़ा। उसका गला भर आया और वह रो पड़ा।

शिशु के देह में रही धनपाल की आत्मा ने सहजता से सहानुभूतिपूर्वक गोविंद सिंह की पीठ थपथपाई। वह दृश्य हृदयस्पर्शी था। उसके बाद वह शिशु स्वामी जी की ओर दौड़ पड़ा और उन्हें प्रणाम निवेदित किया और पूर्ववत् शिशुरूप में आ गया। थोड़े ही दिनों बाद वह बालक चल बसा। मानो कोई लेनदार पैसे वसूल कर अपने घर वापस चला गया हो।

पुनर्जन्म अथवा किसी आत्मा के परकाया प्रवेश की यह कहानी यह स्पष्ट करती है कि पापकर्म, बुरे कर्म करने वाले पुलिस, अदालत या कानून के शिकंजे से बच निकल सकते हैं, पर उनके कर्म उनका तब तक पीछा करते हैं, जब तक उन कर्मों का भोग पूरा न हो जाए। ऐसे कुकृत्यों, कारनामों का हिसाब लेने के लिए प्रकृति भी, एक से बढ़कर एक खेल खेलती है और कुकर्मी, अधर्मी को पकड़ ही लेती है और उसे उसके कर्मों का भोग दंड देकर रहती है। इसलिए हमें सदैव अच्छे, शुभ और पुण्यकर्म ही करने चाहिए और बुरे कर्मों से दूर रहना चाहिए।

परमपूज्य गुरुदेव ने कर्मफल विधान को लेकर कहा भी है—"**पुलिस अदालत है आसान, लेकिन अटल है ईश विधान।**" अर्थात पुलिस और अदालत से बच निकल सकते हैं, पर कर्मफल विधान से नहीं। कानून के शिकंजे से बच निकल सकते हैं, पर विधि के विधान से नहीं। ❑

"मनुष्य के जीवन में परमार्थवृत्ति का इतना महत्त्व क्यों बताया गया है?" शिष्यों ने प्रश्न पूछा।

गुरु ने उत्तर दिया—"ये समस्त सृष्टि ही परमार्थ वृत्ति के कारण चल रही है। बीज स्वयं को मिट्टी में गलाता है तो वृक्ष बन पाता है। माँ अपना रक्त, मज्जा, वसा आदि भावी संतान को देती है तो उसका शरीर बन पाता है। वृक्ष फलों को स्वयं ग्रहण नहीं करते, वरन दूसरों को देते हैं। नदी भी अपने पानी का उपयोग दूसरों की प्यास को बुझाने में करती है। हर प्राणी का कर्त्तव्य ही यही है कि वह स्वयं को बड़े उद्देश्य के लिए समर्पित करे—यही परमार्थ-वृत्ति है, इसी में मनुष्य जीवन का सदुपयोग है।"

पक्षियों से सीखें, प्रकृति के संग रहना

ऐसा कोई नहीं, जिससे हम कुछ सीख नहीं सकते, बस, सीखने का भाव होना चाहिए। व्यक्ति हो या जीव-जंतु या फिर पशु-पक्षी, सभी में कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो हमें कुछ सीखने की प्रेरणा देती हैं। पक्षियों का ही जगत् लें तो इनमें कई ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो इनसान तक के लिए दुर्लभ रहती हैं। इसमें सबसे प्रमुख है प्रकृति के संग रहने की कला।

पक्षियों की जीवनशैली पूरी तरह प्रकृति के साथ एक लय एवं ताल में आबद्ध होती है और वे एक अनुशासित जीवन जीते हैं। इनके सोने, जागने का क्रम निर्धारित होता है। रात होते ही ये सो जाते हैं और प्रातः जल्दी जागकर उठ जाते हैं। अपनी दिनचर्या प्रारंभ करते हैं और गाते-चहकते हुए हलका-फुलका जीवन जीते हुए दिन का भरपूर उपयोग करते हैं और आनंद से रहते हैं एवं रात होते ही अपने घोंसलों में आकर विश्राम करते हैं तथा रात को नहीं घूमते।

इस तरह पक्षी प्रकृति-चक्र का पूरा पालन करते हैं और एक लयवद्ध जीवन जीते हैं। पक्षियों के खान-पान की आदत भी अनुकरणीय रहती है। पक्षी कभी ठूँस-ठूँसकर नहीं खाते। इनके सामने कितने ही दाने डाले जाएँ, ये थोड़ा खाकर उड़ जाते हैं और सब कुछ नहीं ले जाते। इस तरह ये अपरिग्रही जीवन जीते हैं।

पक्षियों की यह अपरिग्रह वृत्ति प्रशंसनीय है। ये प्रकृति से उतना ही लेते हैं, जितना कि इन्हें आवश्यकता होती है। ये कभी संग्रह नहीं करते। प्रतिद्वंद्विता से दूर, अपना सरल एवं प्राकृतिक जीवन जीते हैं।

ये अपना आहार भी नहीं बदलते तथा रात को कुछ नहीं खाते। किसी कारण यदि ये बीमार पड़ जाते हैं तो खाना छोड़ देते हैं और तभी आहार ग्रहण करते हैं, जब वे स्वस्थ हो जाते हैं। इस तरह ये प्रकृति को ही अपना चिकित्सक मानते हुए संयमित एवं संतुलित जीवन जीते हैं।

पक्षी बहुत श्रमशील होते हैं और अपने शरीर से खूब काम लेते हैं। रात के अतिरिक्त विश्राम नहीं करते। आश्चर्य नहीं कि इनके अथक श्रम की आदत इन्हें नीरोग रखती है। पक्षियों में हृदय, गुरदे, यकृत, पेट आदि के रोग नहीं होते और ये स्वस्थ रहते हैं। स्वयं प्रसन्न रहते हैं और कूदते-फुदकते हुए जीवन का तराना गाते हुए दूसरों को भी शांति एवं प्रसन्नता का उपहार बाँटते हैं।

पक्षी अपना माता-पिता का दायित्व भी बखूबी निभाते हैं। ये अपने बच्चों को भरपूर प्यार देते हैं और साथ ही अपने बच्चों को सही समय पर उड़ना सिखाते हैं। अपने साहचर्य में ये चूजों को संयम, श्रम, नियमितता एवं सूझ का पाठ पढ़ाते हैं और शीघ्र ही नन्हे पक्षी स्वतंत्र रूप से जीवनयापन योग्य हो जाते हैं। पालन-पोषण के संदर्भ में पक्षियों का निस्स्वार्थ प्रेम एवं बिना प्रतिफल की अपेक्षा के कर्त्तव्यपालन एक अनुकरणीय मिसाल रहती है।

ये कुछ ही समय में अपने चूजों को उड़ने व दुनिया को देखने योग्य तैयार कर देते हैं। पक्षी अमूमन झुंड में रहना पसंद करते हैं, जहाँ ये एक दूसरे से सीखने, भावसवंदेना का आदान-प्रदान और अपनी रक्षा संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। झुंड में एक साथ उड़ान भरना शिकारियों से बचने में सहायक रहता है, दूसरा यह आपसी

संबंधों को सुदृढ़ करने व नए मित्रों को खोजने में सहायता करता है।

साथ ही पक्षी स्वतंत्र जीवन के पक्षधर रहते हैं। इन्हें बंधन के बजाय स्वतंत्रता प्रिय रहती है। ये आकाश में स्वच्छंद विचरण करते हैं और अपनी मरजी का जीवन बिताना पसंद करते हैं। प्रकृति के साथ सघन समीपता के चलते पक्षियों में छठी इंद्रिय इस कदर विकसित होती है कि वह प्रकृति में होने वाली सूक्ष्म हलचलों से भिज्ञ रहते हैं और तदनुरूप व्यवहार करते हैं।

मौसम में होने वाले परिवर्तनों की आहट पाते ही इनकी परिव्रज्या प्रारंभ होती है। अमुक ऋतु में कोयल व अन्य पक्षियों के दर्शन होते हैं और उस मौसम के समाप्त होते ही ये अपने अनुकूल परिवेश में चले जाते हैं। हजारों किलोमीटर दूर से यात्रा कर उड़ाने भरने वाले साइबेरियन पक्षियों में तो यह क्षमता एक अलग ही स्तर पर विकसित देखी जा सकती है, साथ ही इनको प्रकृति द्वारा प्रदत्त अदम्य जीवट भी मनुष्य मात्र के लिए मिसाल रहता है।

पक्षी प्रकृति के रक्षक की भूमिका में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। ये पौधों के परागण में सहायता करते हैं और साथ ही कीटों की संख्या को भी नियंत्रित करते हैं।

वृक्षों के फलों को खाकर ये इनके बीजों को दूर-दूर तक फैलाते हैं और प्रत्यक्ष रूप से वृक्षारोपण में अपनी भूमिका निभाते हैं। इस तरह पक्षी प्रकृति के विस्तार एवं संतुलन-संरक्षण में भी सहायता करते हैं। बाहर से देखने पर पक्षियों का जीवन सरल एवं तनावमुक्त प्रतीत होता है, लेकिन इन नन्हे जीवों के संघर्ष एवं खतरों से जूझने के जज्बे को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

सरदी हो या गरमी, आँधी-तूफान हो या वर्षा, पक्षी इनका बहादुरी के साथ सामना करते हैं। इनके खतरों से जूझते हुए, निरंतर एक सक्रिय जीवन जीते हैं और आनंद से चहकते हुए चहुँओर शांति एवं आनंद का प्रसार करते रहते हैं। पक्षियों के इन उपकारों को देखते हुए हमारा भी कर्त्तव्य बनता है, पक्षियों के लिए रहने योग्य उपयुक्त वातावरण एवं आश्रय की व्यवस्था करने में सहयोगी बनें।

उनके लिए उपयुक्त घोंसले बनाएँ। घरों के आस-पास जल की उचित व्यवस्था रखें, विशेषकर गरमी के मौसम में जब जल-स्रोत सूखने लगते हैं। चारों ओर हरियाली का आच्छादन अधिक-से-अधिक बनाएँ, जिससे ये पक्षी झुरमुटों व वृक्षों में सहज रूप से आबाद होकर सुबह-शाम चहचहाने के साथ परिवेश को आनंदित रख सकें। ❑

रेशम के कीड़े को घर बनाते देख संत हँसे व शिष्यों से बोले—"जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपनी लार से अपना घर बनाता है और उसी में जकड़कर मर जाता है, पर कुछ चतुर कीड़े इस घर को काटकर निकल भी जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने लिए अज्ञान के बंधन स्वयं ही खड़े करता है, उसी में जकड़ा, सड़ता रहता है। यदि वह चाहे तो विवेक से उन्हें काटकर बंधन-मुक्त भी हो सकता है। यही जीवन का सत्य है।

सज्जनता के वातावरण का निर्माण

परमपूज्य गुरुदेव के युग निर्माण की धुरी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व की समुन्नति है। जीवन की समग्रता में आंतरिक और बाह्य पक्ष— दोनों समाहित हैं। व्यक्तित्व की संपूर्णता में अंत:-बाह्य पहलुओं का समन्वित आधार मौजूद है। इस समग्रता एवं समन्वय की अभिव्यक्ति सत्संकल्प के क्रमिक सोपानों में गुँथी हुई है।

पिछले सप्तम सूत्र में पूज्य गुरुदेव ने जीवन के आंतरिक पक्ष की गुणवत्ता और मापदंड-मूल्यांकन के लिए चार आयाम प्रस्तुत किए हैं। उन चारों आयामों को आदर्श बनाकर सहज ही मानवीय जीवन एवं व्यक्तित्व के विकास एवं उन्नति के स्वरूप को परखा जा सकता है।

आंतरिक जीवन के मानक मूल्यों के रूप में उनका युग निर्माणी प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब सत्संकल्प के आठवें सूत्र में जीवन के बाह्य स्वरूप की अभिव्यक्ति के चार मानक, मूल्य और आदर्श प्रकट हुए हैं। पिछले सूत्र में समाहित जीवन दर्शन का यह उत्तरार्द्ध भाग समझा जा सकता है। इसमें मानवीय आचरण एवं व्यवहार की अभिव्यक्ति के आदर्श मूल्यों-आदर्शों का प्रकटीकरण है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में यह आठवाँ सोपान है—**'चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।'** मधुरता—वाणी, व्यवहार में। स्वच्छता—रहन-सहन और सोच-विचार में। सादगी—जीवनशैली में और सज्जनता—लोक-व्यवहार में आचरण से मानवीय गरिमा को स्थापित करने में प्रकट होती है।

ये चारों आदर्श व्यावहारिक जीवन के परम मूल्य कहे जा सकते हैं और इन्हें आधार बनाकर बाह्य जीवन की गुणवत्ता और उत्कृष्टता का मूल्यांकन एवं निर्धारण सहजता से किया जा सकता है। यह सर्वविदित है कि व्यक्ति के आंतरिक जीवन की श्रेष्ठता का पता बाहर उसके कर्म, आचरण, व्यवहार के द्वारा संभव होता है। भीतरी जीवन में विचार, भावना और व्यक्तित्व का स्तर क्या है—इसका निर्धारण बाह्य आचरण की अभिव्यक्ति से होता है।

व्यक्ति की सत्ता स्वयं तक ही नहीं सीमित है, वरन उसके दायरे में—परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व-वसुधा पर मौजूद समस्त मानवता का अभिन्न भाग अंतर्निहित है। व्यष्टि जीवन के साथ समष्टि जीवन की समस्त संभावनाएँ जुड़ी हुई हैं। वैयक्तिक जीवन का सार्वभौमिक जीवन में रूपांतरण का उच्चतम आदर्श मौजूद है।

ऐसी समग्रता और व्यापकता की दृष्टि को आधार बनाकर जीवन की रीति-नीति अपनाने पर ही मनुष्य की मनुष्यता सार्थक बनती है। जीवन में सच्ची मनुष्यता की प्राप्ति ही युग निर्माण का वह धरातल है, जिस पर पूज्य गुरुदेव के महान लक्ष्य 'मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण' की संरचना विनिर्मित होनी है।

इस मर्म का समुचित एवं सरलतम मार्गदर्शन एवं दिशा-निर्देश सत्संकल्प के इन महामंत्र स्वरूप सूत्रों में प्रकट हुआ है। यह आठवाँ सत्संकल्प मानव एवं मानवीय गरिमा को देवत्व की दिशा में विकसित बनाने वाले प्रेरणा-सूत्रों को लेकर प्रस्तुत

हुआ है। व्यावहारिक जीवनस्तर पर बाह्य जगत् में मनुष्य के कर्म, आचरण और व्यवहार के उच्चतम आदर्शों को इसमें गुरुदेव ने चार सरलतम जीवन-मूल्यों के रूप में व्यक्त किया है।

पहला है, जीवन में मधुरता को धारण करना एवं चारों ओर इसको प्रसारित करना। मधुरता का तात्पर्य है—अंतर्भावों में प्रेम, व्यवहार में विनम्रता और विशेषकर वाणी-वचनों में मिठास का होना। हमारे प्राचीन सिद्धांतों-विचारों में भी मनुष्य जीवन में मधुरता की प्रार्थना की गई है और इस जीवन में सदा और सर्वत्र मधुर वातावरण का आह्वान है। जीवन में मिठास, सुख, प्रसन्नता, आनंद, सामंजस्य जैसे मूल्यों को केंद्र में रखकर ऋग्वेद में '**मधुवाता ऋतायते**' की कामना है।

अथर्वा ऋषि के द्वारा मधुसूक्त के रूप में अथर्ववेदीय ऋचाओं में मधुरतापूर्ण जीवन की आकांक्षा प्रस्तुत है। माधुर्य का संचार और सौभाग्य की अभिवृद्धि एवं मंगलमय जीवन की उदात्त भावना हमारी संस्कृति के जीवन-दर्शन में आदिकाल से मौजूद है। सत्संकल्प के इस सूत्र में इसी दिव्य भावना को जीवन में पुनर्स्थापित करने की प्रेरणा है।

मधुरतापूर्ण व्यवहार और मधुर वाणी सभी को प्रिय है, परंतु सच्चाई यह है कि व्यावहारिक जीवन की यथार्थता में मधुरता का स्वाद तिरोहित नजर आता है। भीतर की दुष्टता, दुर्भावनाओं, कुंठाओं, अहंकार, संकीर्णता से ग्रस्त जीवन में वाणी-व्यवहार की मधुरता आ भी कैसे सकती है?

वाणी की कटुता, कर्कशता और व्यवहार की असभ्यता, अभद्रता ने पारस्परिक विद्वेष, शत्रुता, कलह और अशांति ने समूचे जीवन-व्यवहार को दूषित कर दिया है। मधुरता का संकल्पपूर्वक वरण किए बिना व्यवहार जगत् की इन समस्याओं का समाधान संभव नहीं है, परंतु मधुरता के विषय में सोचने, इच्छा करने से यह जीवन में फलीभूत नहीं हो सकती।

इसके लिए स्वयं के भीतर ही सत्य, प्रेम और मानवीय संवेदना की प्रतिष्ठा करना आवश्यक है।

मधुर होने का तात्पर्य यही है कि व्यक्तित्व में सहनशीलता, करुणा, प्रेम और सभी के प्रति आत्मीयता का भाव जैसे दिव्य गुण विकसित किए जाएँ। तभी मधुरता जीवन में एक आध्यात्मिक विशेषता बनकर व्यक्ति के मन, वचन और कर्म के चारों ओर सच्ची मिठास का वातावरण उत्पन्न करती है। यह समझना आवश्यक है कि पूज्य गुरुदेव के द्वारा प्रस्तुत इन जीवन-सूत्रों में भी मधुरता का अर्थ आंतरिक व्यक्तित्व की विशिष्टता को

"भक्तों का जीवन सादगीपूर्ण क्यों होता है?" प्रश्न महाराज संजय के मन में उठा।

उनके महामंत्री विद्वान थे, उन्होंने जिज्ञासा का समाधान किया व बोले—"महाराज! अहंकार व भक्ति का साथ-साथ रह पाना संभव नहीं है। दोनों में से एक ही मनुष्य के व्यक्तित्व में रह पाता है।

"इसीलिए भक्तजन सादा जीवन-उच्च विचार का सिद्धांत अपनाते हैं। खाते कम और खिलाते अधिक हैं, माँगते कम और देते अधिक हैं, चाहते कम और देने की इच्छा अधिक रखते हैं। इसी में भक्त जीवन का गौरव है।"

प्राप्त करना ही है। बात केवल बाहर मीठा बोलने या विनम्रता, शिष्टता दिखाने मात्र तक सीमित नहीं है।

इसके आगे आंतरिक जीवन की स्थिति में मधुरता को उत्पन्न करने वाले गुणों से बात बनती है। सच्चे अर्थों में जीवन में मधुरता का आना एक ईश्वरीय क्षमता का द्योतक है। यह व्यक्तित्व का वह उच्चस्तरीय आध्यात्मिक गुण है, जिसकी बाह्य अभिव्यक्ति वाणी की मिठास और व्यवहार की विनम्रता-आत्मीयता में दिखाई देती है।

मधुरता से ओत-प्रोत जीवन सबको अपना प्रिय बना लेता है एवं स्वयं भी सबका प्रिय बनकर सम्मान प्राप्त करता है। उसकी मीठी वाणी से शत्रु भी मित्रवत् हो जाता है। कठोर हृदय भी द्रवित हो उठता है और सब ओर प्रेम, आत्मीयता के वातावरण भीतरी कुंठा, तनाव, अशांति, द्वेष जैसी सैकड़ों व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की बुराइयाँ समाप्त होने लगती हैं।

व्यक्ति यदि सत्य, मधुर और प्रिय वाणी अर्थात सम्यक वाणी को ही जीवन में आत्मसात् कर आचरण में उतार ले तो इतने मात्र से भी व्यक्ति, परिवार और समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन घटित होने लगेगा। मनुष्य जीवन में मनुष्यता के आचरण का पहला सोपान मधुरता ही है। वाणी-व्यवहार से सज्जनता, शालीनता, विनम्रता झलकने लगे तो सहज ही उदारता, सदाचार, धैर्य, संयम, सेवा, नैतिकता और परोपकार के जीवन-मूल्य जीवंत हो मानवता को धन्य बनाने लगेंगे।

आचरण में मधुरता की यह कसौटी पूज्य गुरुदेव ने अपने महान लक्ष्य से जुड़े प्रत्येक परिजन के लिए निर्धारित की है। स्वयं को इसके प्रति संकल्पित बना लेने पर ही इसे चारों ओर प्रसारित करना संभव है। सत्संकल्प के इस सूत्र का दूसरा आयाम 'स्वच्छता' का अपने चारों ओर वातावरण बनाने की प्रेरणा प्रदान करता है। स्वच्छता जीवन की एक प्रवृत्ति, स्वभाव और संस्कार है।

बाह्य जगत् में सुंदरता, पवित्रता, सुव्यवस्था और सभ्यता के रूप तथा अंतर्जगत् में भाव, विचार और मन की निर्मलता के रूप में अभिव्यक्त हो 'स्वच्छता' स्वयं एक जीवन-मूल्य बन जाती है।

शरीर, मन और भाव की स्वच्छता और घर-परिवार, समाज, पर्यावरण की स्वच्छता—यह इन सभी स्तरों पर सुख, सौंदर्य, आरोग्य और शांति का वातावरण उत्पन्न करती है। मधुरता की भाँति स्वच्छता के मूलस्रोत भी मानवीय व्यक्तित्व के आंतरिक सद्‌गुणों के रूप में ही मौजूद होते हैं। व्यक्ति की सोच, विचार और धारणा में स्वच्छता की प्रतिष्ठा हो जाने से बाह्य जीवन और जगत् के दृश्य-परिदृश्य में स्वच्छता का प्रसार स्वतः दिखाई पड़ने लगेगा।

अंतरंग जीवन में स्वार्थ, संकीर्णता, ईर्ष्या, छल, पूर्वाग्रह, दुर्विचार, कुंठा जैसी अनेकों कमजोरियों-कमियों के रहते जीवन में भीतर और बाहर गंदगी-अवांछनीयता ही उत्पन्न होती रहती है। अंदर की साफ-सफाई न हो तो बाहर की स्वच्छता का मूल्य भी न्यून ही रह जाता है। अतः इस सूत्र में भीतर-बाहर दोनों ओर स्वच्छता की स्थिति उत्पन्न करने का संकल्प है।

भीतर मनोभावों की शुद्धता से मानवीय आचरण की गरिमा जुड़ी है जो समाज में सुख, शांति, सामंजस्य और कल्याणकारी जीवन का निर्माण करती है। इसी तरह बाहर की शुद्धता, पवित्रता से आयु, आरोग्य, प्रकृति, पर्यावरण आदि सभी समृद्ध बन जीवन को सुख, सौभाग्य और आनंद से भर देते हैं। अंदर-बाहर दोनों ओर की स्वच्छता से जीवन एक ईश्वरीय वरदान बन जाता है, जिसमें रोग, शोक, कष्ट, पीड़ा, दुःख आदि का कोई स्थान नहीं रह जाता है।

यही स्थिति गुरुदेव के वचनों में—'**स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज**' का निर्माण करती है। हमारी सनातन संस्कृति में स्वच्छता की महत्ता जीवनचर्या की अनिवार्यता और समग्रता के साथ जुड़ी हुई है। आहार-विहार, शौच, तप, यम-नियम, शुद्धि-क्रिया आदि अनेक रूपों में इसकी व्यापकता समाहित है।

ऋषि परंपराओं में इसे सदैव स्वस्थ जीवन की नींव के रूप में स्थान प्राप्त है। इसका संबंध शारीरिक स्तर पर आरोग्य, मानसिक स्तर पर शांति, आत्मविश्वास, प्रसन्नता और सामाजिक स्तर पर सम्मान, प्रतिष्ठा एवं सुसंस्कृति से है। सत्संकल्प के इस आठवें सूत्र के सोपानों में मधुरता, स्वच्छता के बाद अगले क्रम में पूज्य गुरुदेव ने 'सादगी' को मानवीय आचरण के श्रेष्ठतम मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

'सादा जीवन-उच्च विचार' का महान आदर्श स्वयं उनके व्यक्तित्व का पर्याय रहा है। साथ ही इसकी आकांक्षा उन्होंने विश्व मानवता के नवनिर्माण में भागीदार प्रत्येक जन से भी की है। सादगी का तात्पर्य जीवन की कमजोर या गरीबी की अवस्था नहीं, अपितु यह विवेकसम्मत सहज जीवन का एक उच्चतम आदर्श है। सादगीपूर्ण जीवन में बहुत-सी जटिलतम समस्याओं का समाधान व दुर्लभ उपलब्धियों का उपहार यों ही प्राप्त हो जाता है।

मानसिक चिंता, तनाव, अभावों का विक्षोभ, अशांति, शत्रुता जैसे अनेक विकार सादगी के जीवन पर असर नहीं करते, बल्कि इनके स्थान पर सुख, शांति और संतोष की अनुभूति के साथ-साथ अनावश्यक श्रम, समय, व्यय, आडंबर, दिखावे आदि से छुटकारा भी मिल जाता है।

सादगी के आदर्श में जीवन को ढालने वाले व्यक्ति की आवश्यकताएँ कम होती हैं, जिससे बहुत-सी अतिरिक्त चिंताओं, प्रलोभनों, प्रतिस्पर्धाओं से मुक्त सरलता और निश्चिंतता का जीवन अनुदान स्वरूप मिल जाता है। पैसा, श्रम, समय—तीनों की बचत से जीवन में श्रेष्ठ, सार्थक और परमार्थ के कार्य बन पड़ते हैं।

आत्मविश्वास और आत्मसंतुष्टि की उपलब्धि सादगी के जीवन में सहज हो जाती है, जिससे जीवन की अवस्था ऊँची और असाधारण हो उठती है।

ऐसे सादगीपूर्ण असाधारण जीवन को ही संसार में कल्याणकारी कार्यों को करने का सुअवसर प्राप्त होता है। स्वार्थ, अहं, लालच, द्वेष, दंभ से रहित सादा जीवन ही विज्ञों की दृष्टि में उच्च विचारों के उत्पादन की सर्वाधिक उपजाऊ भूमि समझी गई है। यहाँ भोग भी जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में सिमटकर विवेक की कुंजी से ठहर जाता है और इच्छाएँ-आकांक्षाएँ तप और त्याग की आहुति बनकर '**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा**' को सार्थक करती हैं।

ऐसी सादगी का जीवन ही युगसृजन के कार्यों में लगा पाना संभव होता है और सार्थक परिणामकारी भी। इसलिए पूज्य गुरुदेव ने अपने मिशन में भी सभी के लिए सादगी के मूल्य को जीवन-साधना का अनिवार्य अंग बनाकर इसे आत्मसात् करने का निर्देश दिया है। इस सूत्र का अगला एवं अंतिम चरण है—'सज्जनता'। सज्जनता व्यक्ति के चरित्र की उच्चतम अवस्था है।

इसका निर्माण व्यक्तित्व में ईमानदारी, दया, सेवा, विनम्रता, निस्स्वार्थ सेवा जैसे अनेक सद्गुणों से मिलकर होता है। उदारता, करुणा, सहानुभूति जैसे मानवीय संवेदना के गुणों से इसकी पहचान सहज हो जाती है। सज्जनता को धारण करने वाले व्यक्ति का जीवन समाज में मानवता का पर्याय बनकर निरंतर मानवीय मूल्यों, प्रेम, सेवा और सहयोग की भावना का सर्वत्र विस्तार करता है।

लोगों के बीच, समाज में सज्जनता दिखना या कहलाना अलग बात है, लेकिन सज्जनता का जीवन

में होना अलग है। यह विशुद्ध रूप में व्यक्तित्व का आंतरिक मूल्य है। इसकी उत्पत्ति ही अंत:करण की सहृदयता, संवेदना, उदारता और भीतरी ईमानदारी से होती है।

विपरीत एवं विषम परिस्थितियों में भी धैर्य और आचरण की मर्यादाओं का संबल बना रहता है। अपमान, कठिनाई एवं दुर्व्यवहार की स्थिति में भी सज्जनता का जीवन धैर्य, उदारता और प्रेम का ही परिचय देता है।

ऐसे व्यक्ति निस्स्वार्थ भाव से तन, मन, धन लगाकर लोक-मंगल के कार्यों को निरंतर गतिशील बनाए रखते हैं। सत्य, विश्वास, प्रेम और परोपकार जैसे जीवन के उच्चस्तरीय आध्यात्मिक मूल्यों को चरितार्थ कर सज्जन व्यक्ति स्वयं एवं अपने आस-पास के संपूर्ण वातावरण को धन्य बना लेते हैं। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव के इस सूत्र में कहे गए चारों जीवन-मूल्य आंतरिक चेतना के परिवर्तन से चरित्र निर्माण की उच्चतम स्थिति को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्म, आचरण और व्यवहार की उत्कृष्टता को प्राप्त करना और उससे जनसमुदाय को लाभान्वित करने का दिशा-निर्देशन इस सत्संकल्प में समाहित है। मधुरता—पारस्परिक संबंधों को पोषित करने के लिए, स्वच्छता—अंत:- बाह्य प्रकृति और प्रवृत्ति के शोधन-संवर्द्धन के लिए, सादगी—चारों ओर शांति, संतोष और सुख-प्रसन्नता के लिए तथा सज्जनता—ईमानदारी, प्रामाणिकता और विश्वास के लिए अर्थात संपूर्ण मानवीय आचरण एवं व्यवहार के लिए श्रेष्ठतम आदर्श मूल्यों-कर्त्तव्यों की पूज्य गुरुदेव ने इस आठवें सत्संकल्प में सरलतम अभिव्यक्ति की है। ❑

एक परमहंस की ख्याति से एक कथित योगी बहुत ईर्ष्या रखता था। एक दिन उसने परमहंस को नीचा दिखाने की ठानी। वह उनके पास जाकर बोला—"क्या तुम कोई चमत्कार दिखा सकते हो या व्यर्थ में ही परमहंस कहलाते हो?"

परमहंस बोले—"भैया! मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। मेरे पास कोई सिद्धि नहीं।"

योगी बोला—"मैंने अठारह वर्ष हिमालय पर घोर तपस्या करके पानी पर चलने की सिद्धि पाई है। यदि तुम्हारे पास कोई सिद्धि नहीं, तो परमहंस होने का पाखंड छोड़ दो।"

उसकी गर्वोक्ति सुनकर वे बोले—"भाई! अठारह साल तुमने व्यर्थ ही गँवाए। मुझे जब नदी पार जाना होता है तो मैं माँझी को दो पैसे देकर नदी पार चला जाता हूँ। तो जरा बताओ कि तुम्हारी अठारह साल की तपस्या से प्राप्त सिद्धि का मूल्य क्या दो पैसे से अधिक है?"

परमहंस का जवाब सुनकर योगी निरुत्तर होकर सिर झुकाए वहाँ से चला गया।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—210

राष्ट्र-निर्माण के तत्त्वों पर शोध

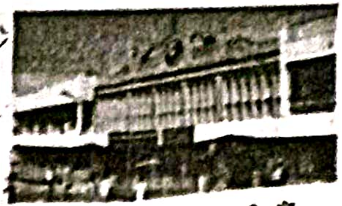

राष्ट्र और राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति, समाज और संस्कृति के उदात्त जीवन की धुरी रही है। भारतवर्ष के प्राचीनतम विचारों में '**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**' की भावना में समूची धरा-धाम को मातृवत् एवं स्वयं को उसकी संतान के रूप में उद्धृत किया गया है।

शास्त्रों में भी जननी और जन्मभूमि को समान गरिमा, सम्मान और पूज्य कहा गया है अर्थात राष्ट्र एक जीवंत प्रतिमान है न कि विशिष्ट भू-भाग व भू-आकृति से घिरा कोई जमीन का टुकड़ा। हमारी संस्कृति में राष्ट्र एक जीवंत चेतना है, जो इसमें वास करने वाले जीवन के हर आयाम में समाहित है।

राष्ट्र के निर्माण तथा उत्थान-पतन की कहानी उसके नागरिकों के भीतर मौजूद राष्ट्रीय चेतना की जाग्रत अथवा सुप्त अवस्था पर निर्भर करती है। राष्ट्र की अस्मिता, अस्तित्व और आदर्श उसके नागरिकों में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना में सन्निहित हैं। राष्ट्र-गौरव एवं राष्ट्र-सम्मान की धारा नागरिकों के अंत:भावों से ही प्रस्फुटित होती है। दिव्य परंपराएँ, संस्कृति और जीवन-मूल्य इस चेतना को पोषित कर सदैव जीवंत और जाग्रत बनाए रखते हैं।

इतिहास के कालखंडों में देखा जा सकता है कि राष्ट्र जब कभी संकट से घिरता नजर आया है, तभी महापुरुषों, पुरोधाओं, उद्धारकों ने इसी राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत कर संकटों का निवारण किया है।

आधुनिक समय में भी जब राष्ट्र की गौरवशाली संस्कृति, परंपराओं और जीवन-मूल्यों पर घात-प्रतिघात होते रहे हैं, राष्ट्रीय चेतना को विखंडित करने वाली प्रवृत्तियाँ मुखर हुई हैं—तब-तब राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत कर राष्ट्र-निर्माण की दिशा में लगाने की आवश्यकता अनुभव हुई है। एक समुन्नत, श्रेष्ठ और विकसित राष्ट्र के निर्माण में जिन महत्त्वपूर्ण पहलुओं का योगदान रहता है, उन सभी पहलुओं-पक्षों को आधार बनाकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के 'भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग' के अंतर्गत एक विशिष्ट शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है।

यह अध्ययन वर्ष—2020 में शोधार्थी विनय कुमार शर्मा द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० रवीन्द्र सिंह के निर्देशन में पूर्ण किया गया है। सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक रीति से संपन्न किए गए इस शोध अध्ययन का शीर्षक है—'**स्वामी विवेकानंद एवं आचार्य श्रीराम शर्मा की विचारधारा में राष्ट्र-निर्माण के तत्त्व—एक विवेचनात्मक अध्ययन**।'

शोधार्थी द्वारा इसे कुल सात अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन का प्रथम अध्याय है—'**स्वामी विवेकानंद एवं आचार्य श्रीराम शर्मा की विचारधाराओं की पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय**।' इसके प्रथम चरण में स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व एवं विचारों के विधि-पहलुओं की विवेचना की गई है तथा दूसरे क्रम में आचार्य श्रीराम शर्मा के जीवन दर्शन एवं नवनिर्माण की विचारधारा व प्रयासों को प्रस्तुत किया गया है।

इन दोनों महापुरुषों का जीवन चरित्र अवतारी सत्ता, युगद्रष्टा, समाज, राष्ट्र और संस्कृति के उन्नायकों के रूप में प्रतिष्ठित है। दोनों के जीवन में आध्यात्मिक गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक ने उन्नीसवीं सदी एवं दूसरे ने बीसवीं सदी में राष्ट्र-निर्माण के विचारों से अद्वितीय क्रांति उत्पन्न की है।

द्वितीय अध्याय है—**'स्वामी विवेकानंद की विचारधारा एवं राष्ट्र-निर्माण की परिकल्पना।'** इसके अंतर्गत स्वामी विवेकानंद का राष्ट्रबोध, राष्ट्र की आत्मशक्ति के रूप में धर्म-अध्यात्म, राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में युवाओं एवं लोकसेवकों की भूमिका ऋषिप्रणीत सनातन मूल्य, ज्ञान, शिक्षा एवं नारी शक्ति के आदर्श आदि प्रमुख विचारों की विस्तृत व्याख्या के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण की अवधारणा को भली प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

राष्ट्र-निर्माण की प्रेरणा देते स्वामी जी के शब्द हैं—'हमें अपनी मातृभूमि के ऋण को कभी भूलना नहीं चाहिए। प्रत्येक में अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा व निष्ठा होनी चाहिए। अपने हृदय को राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता के भाव से ओत-प्रोत कर लेना ही राष्ट्रनिष्ठ होने का प्रमाण है। राष्ट्र की प्रगति का एकमात्र उपाय है कि नागरिक, राष्ट्र-उत्थान में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह ठीक तरह से करें।'

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि 'भारत का कार्य विश्व में आध्यात्मिक है।' स्वामी जी के अनुसार—'हमारे राष्ट्र जीवन का मेरुदंड धर्म है। धर्म हमारी जीवनीशक्ति और संस्कृति की आत्मा है। राष्ट्र को बदलने की शक्ति केवल धर्म को आधार बनाकर आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति करने में है।'

त्याग और सेवा हमारे राष्ट्रीय आदर्श हैं, जो धर्म-भावना और आध्यात्मिक दृष्टि से पोषित हैं। ऐसे ही राष्ट्रीय चरित्र को गढ़ना और सांस्कृतिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करना राष्ट्र-निर्माण का प्रथम चरण है। सच्चे, चरित्रवान एवं राष्ट्रनिष्ठ मनुष्यों का निर्माण करना स्वामी जी के जीवन का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

शोध अध्ययन का तृतीय अध्याय है—**पं. श्रीराम शर्मा आचार्य प्रणीत 'सप्तसूत्री' कार्यक्रम की व्याख्या।** इसके अंतर्गत साधना, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, पर्यावरण संरक्षण, व्यसनमुक्ति, कुरीति-उन्मूलन और नारी जागरण आंदोलन की विवेचना प्रस्तुत करते हुए पूज्य गुरुदेव के राष्ट्र-निर्माण संबंधी सत्प्रयासों एवं प्रक्रियाओं को उजागर किया गया है।

वैसे तो पूज्य गुरुदेव का चिंतन एवं अभियान युग निर्माण योजना के माध्यम से समूची विश्व मानवता के उत्थान एवं उत्कर्ष के लिए प्रस्तुत हुआ है, परंतु उसमें राष्ट्र-निर्माण भी एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कड़ी है। राष्ट्र की प्रगति, उत्थान और मौजूदा विसंगतियों को लक्ष्य कर उन्होंने अपने विचारक्रांति-अभियान में कई क्रांतिकारी गतिविधियों को जन्म दिया है, जिसमें सप्त आंदोलन प्रमुख है। ये सभी आंदोलन राष्ट्र-निर्माण की दिशा में एक विशिष्ट उद्देश्य के साथ जुड़े हुए हैं।

जीवन-साधना के माध्यम से व्यक्ति में आत्म-विश्वास बढ़ाकर सुसंस्कारों, सत्प्रवृत्तियों को उभारना है। शिक्षा-अभियान में शिक्षा के साथ विद्या एवं मूल्यों का समावेश कर समग्र व्यक्तित्व एवं जीवन को उत्कर्ष प्रदान करना है। स्वास्थ्य आंदोलन से स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की परिकल्पना जुड़ी है। स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन की दिव्य परंपराओं एवं प्रणालियों के प्रति जागरूक करते हुए इस आंदोलन में योग, आयुर्वेद एवं प्राचीन भारतीय आरोग्य सिद्धांतों को पुनर्स्थापित करने की रीति-नीति भी समाहित है।

स्वालंबन आंदोलन का उद्देश्य व्यक्ति, समाज की रचनात्मक एवं सृजनात्मक क्षमता को उभारकर स्वावलंबी बनाने की दिशा में प्रेरित करना है।

पर्यावरण संरक्षण एवं प्रकृति मानव के अंतर्संबंधों की संवेदना को जाग्रत कर वर्तमान की पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान की दिशा में प्रशिक्षित एवं तत्पर बनाता है। इसी क्रम में व्यसन मुक्ति, कुरीति-उन्मूलन आंदोलन के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र में फैली नकारात्मक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करना है।

साथ ही नारी जागरण के माध्यम से वर्तमान की आधुनिकता से प्रभावित समाज को नारी गरिमा एवं आदर्श के प्रति सजग बनाकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र में सुसंस्कारिता एवं चारित्रिक गरिमा को स्थापित करना है।

चतुर्थ अध्याय है—**'युग निर्माण योजना द्वारा युवा चेतना शिविर से युवा जागरण।'** इसके अंतर्गत युग निर्माण योजना के परिचय, स्वरूप तथा कार्य-प्रणाली का विस्तृत विवेचन करते हुए राष्ट्र एवं विश्व मानवता के नवनिर्माण में युवाओं की भूमिका को प्रस्तुत किया गया है।

युग निर्माण योजना का महान उद्देश्य **'मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण'** है। इस निमित्त पूज्य गुरुदेव ने धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण की रीति-नीति अपनाते हुए तीन क्रांतियों का सूत्रपात किया है—विचार क्रांति, नैतिक क्रांति और सामाजिक क्रांति।

इन क्रांतियों से समाज के सभी वर्गों को जोड़कर, प्रेरित कर आचार्य जी ने व्यापक स्तर पर प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं संघर्षात्मक अभियानों के द्वारा राष्ट्र-निर्माण की दिशा में अद्वितीय उपलब्धियाँ प्रदान की हैं।

नवनिर्माण में युवाओं की भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते हुए पूज्य गुरुदेव ने युवा आदर्श को प्रस्तुत करते हुए स्वस्थ युवा—सशक्त राष्ट्र, शालीन युवा—उत्कृष्ट राष्ट्र, स्वावलंबी युवा—समृद्ध राष्ट्र, सेवाभावी युवा—सुखी राष्ट्र का संदेश दिया। युवाशक्ति के जागरण, प्रशिक्षण एवं संगठनात्मक रूप से राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में उनके नियोजन की गतिविधियों का इस अध्याय में विस्तृत विवेचन हुआ है।

शोध का पंचम अध्याय है—**'स्वामी विवेकानंद द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थानों एवं अन्य परियोजनाओं का अध्ययन।'** इसके अंतर्गत रामकृष्ण मिशन की पृष्ठभूमि, बेलूड़ मठ की स्थापना, उद्देश्य, कार्य-प्रणाली एवं स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है।

स्वामी जी के इस महान संगठन में उनके विचारों एवं शिक्षाओं को आधार बनाकर व्यापक स्तर पर राष्ट्र के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण का कार्य संपन्न हुआ है। मिशन के कार्यों में सेवा, शिक्षा, नारी-उत्थान, युवाओं को धर्म, संस्कृति और राष्ट्र गौरव से जोड़ने जैसे अद्वितीय अभियान एवं गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

षष्ठ अध्याय है—**'व्यक्ति-निर्माण से राष्ट्र-निर्माण में प्रवृत्त शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय।'** इस अध्याय के अंतर्गत अखिल विश्व गायत्री परिवार के मुख्यालय के रूप में प्रतिष्ठित शांतिकुंज आश्रम की गतिविधियों की विवेचना करते हुए राष्ट्र-निर्माण की दिशा में किए जाने वाले प्रयासों को प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही जीवन विद्या के आलोक केंद्र के रूप में स्थापित देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गतिविधियों में समाहित व्यक्तित्व-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण के प्रयासों की विस्तृत विवेचना की गई है।

अध्ययन का सप्तम सोपान है—**'स्वामी विवेकानंद तथा आचार्य श्रीराम शर्मा की विचारधारा एवं राष्ट्र-निर्माण की परिकल्पनाओं की तुलना एवं उपयोगिता।'** इसके अंतर्गत सर्वप्रथम हमारे राष्ट्र के ध्येय तथा जीवन विद्या के माध्यम से मनुष्य जीवन का निर्माण कर राष्ट्र के उत्थान संबंधी विचारों की विवेचना की गई है। परिवार, समाज, राष्ट्र-निर्माण तथा शिक्षा, नारी

सशक्तीकरण व युवाशक्ति-जागरण से राष्ट्र के आधार को सुदृढ़ता प्रदान करने वाले पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है।

साथ ही राष्ट्र के महान आदर्श '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए स्वामी विवेकानंद जी व पूज्य गुरुदेव के द्वारा स्थापित संचालित राष्ट्र-निर्माण की परियोजनाओं व प्रेरणाओं का विवेचन है।

शोधार्थी की मान्यता में दोनों ही महापुरुषों, महामानवों का जीवन राष्ट्र के प्रति अगाध निष्ठा एवं प्रेम से ओत-प्रोत है और उनके विचारों में समानता है। दोनों के विचारों को आधार बनाकर राष्ट्र-निर्माण का एक मॉडल भी यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

शोध अध्ययन का अंतिम चरण '**उपसंहार**' है। इसमें सभी अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए शोध के महत्त्व, उद्देश्य, निष्कर्ष एवं प्रासंगिकता की विवेचना है।

शोध निष्कर्ष के आधार पर शोधार्थी का मत है कि दोनों महापुरुषों ने अपने-अपने समय में राष्ट्र-निर्माण की ओर विचारों के प्रवाह को मोड़ा है तथा इस दिशा में व्यापक स्तर पर समाज में जाग्रति उत्पन्न की है।

मौजूदा समय में राष्ट्र-निर्माण में उत्पन्न बाधाओं के समाधान व राष्ट्र-उत्थान के लिए दोनों महापुरुषों के विचार एवं योजनाएँ अत्यंत सहायक और प्रेरक हैं। □

उतंक मुनि भगवान विष्णु के परमभक्त थे। वह सौबीर नगर के एक मंदिर में रहकर भगवद्भक्ति, शास्त्राध्ययन तथा ग्रहस्थजनों को सदुपदेश देने में लगे रहते थे। मुनि के जीवन से प्रभावित होकर राजा ने मंदिर को सोने का शिखर भेंट किया।

एक दिन डाकू कणिक ने उस मंदिर के स्वर्ण शिखर को देखा तो सोचा कि यहाँ का पुजारी भी अवश्य ही धनी होगा। यह सोचकर उसने रात को ही मंदिर पर धावा बोल दिया।

उसने देखा कि एक महात्मा भगवद्भक्ति में लीन है। उसने महात्मा पर तलवार तानते हुए कहा—"सारा धन-सोना आदि हमारे हवाले कर दो, अन्यथा काट डालूँगा।" मुनि अपनी भक्ति में लीन रहे।

तब उसने मुनि को धक्का देकर गिरा दिया। तब मुनि ने आँखें खोलीं और बोले—"भैया! तुम लूट-पाट क्यों करते हो ? किसी को सताकर प्राप्त किए गए धन से कभी भला नहीं होता।" कणिक पश्चात्ताप से भर उठा। उसने वहीं पर सिर पटक-पटककर अपनी जान दे दी।

मुनि ने उसके शव पर भगवान विष्णु का चरणामृत छिड़क दिया। कणिक को मुक्ति मिल गई।

अधर्म को धर्म मानती है तामसी बुद्धि

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की बत्तीसवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के इकतीसवें श्लोक की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे पार्थ! ऐसी बुद्धि राजसी कहलाती है, जो धर्म और अधर्म तथा उचित और अनुचित आचरण के मध्य भेद करने में भ्रमित रहती है। श्रीभगवान यहाँ कहते हैं कि जिसकी बुद्धि राजसी है, वह नीति, न्याय, धर्म के पथ पर बढ़ने या न बढ़ने के मध्य में द्वंद्व में रहती है। जो शास्त्रविहित कर्म हैं, आचरण हैं—वे सब धर्म की श्रेणी में आते हैं और जितने भी शास्त्रों में निषिद्ध कर्म हैं—वे अधर्म की श्रेणी में आते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि काम, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष के कारण राजसी बुद्धि मिश्रित हो जाती है। यह स्पष्ट देखने पर भी कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है—राजसी बुद्धि निजी स्वार्थों के वशीभूत होकर अधर्म का सहारा लेती है, इसीलिए ऐसा व्यक्ति फिर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के भेद को नहीं जान पाता और गलत राह पर चल पड़ता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि राग का प्रभाव होने से राजसी बुद्धि में स्वार्थ, संकीर्णता आदि का समावेश हो जाता है। इन दोषों के रहते हुए बुद्धि के लिए धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के मध्य का भेद कर पाना संभव नहीं हो पाता। किसी भी कार्य के गुण-दोष की पहचान किए बिना वह त्याज्य वस्तु का भोग करता चला जाता है और भोग्य वस्तु को ठुकराता चला जाता है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को तामसी बुद्धि का स्वरूप समझाते हुए कहते हैं कि—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ 32॥

शब्दविग्रह—अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता, सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी।

शब्दार्थ—हे अर्जुन! (**पार्थ**), जो (**या**), तमोगुण से (**तमसा**), घिरी हुई बुद्धि (**आवृता**), अधर्म को (भी) (**अधर्मम्**), यह धर्म है (**धर्मम्**), ऐसा (**इति**), मान लेती है (**मन्यते**), तथा (इसी प्रकार अन्य) (**च**), संपूर्ण पदार्थों को भी (**सर्वाथान्**) विपरीत (**विपरीतान्**), मान लेती है (**मन्यते**), वह (**सा**), बुद्धि (**बुद्धिः**), तामसी है (**तामसी**)।

अर्थात जो बुद्धि अंधकार से आच्छादित रहती है, अधर्म में धर्म, असत्य में सत्य की कल्पना करती है, वह तामसिक प्रवृत्ति की होती है। तामसिक प्रवृत्ति की बुद्धि उत्कृष्ट ज्ञान से

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

रहित होती है, इसलिए यह अधर्म को धर्म बताने का अनर्थ करती है।

श्रीभगवान कहते हैं कि जहाँ राजसी बुद्धि वाला व्यक्ति धर्म और अधर्म के मध्य में भ्रमित रहता है तो वहीं तामसी बुद्धि अधर्म को ही धर्म ठहराने के दुराग्रह पर आ जाती है। वे सारे कर्म जो शास्त्रविरुद्ध हैं एवं घोषित रूप से अधर्म में आते हैं—तामसी बुद्धिवाला व्यक्ति ऐसे अधार्मिक कृत्यों को भी धर्म मानने का कार्य करता है।

इस श्लोक को विगत दो श्लोकों के परिप्रेक्ष्य में समझना उत्तम होगा। जब श्रीभगवान ने सात्त्विक बुद्धि के लक्षण गिनाए थे तो उन्होंने कहा था कि जिस बुद्धि के द्वारा कर्म-अकर्म, कार्य-अकार्य, भय-अभय, बंधन एवं मोक्ष का सम्यक ज्ञान हो जाता हो, वो सात्त्विक बुद्धि कही जा सकती है।

इसी प्रकार राजसी बुद्धि के लक्षणों को गिनाते हुए यह कहा था कि राजसी बुद्धि धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य को यथार्थ रूप से नहीं जानती—'**अयथावत् प्रजानाति।**'

कहने का अर्थ है कि सात्त्विक बुद्धि को जानने योग्य हर बात अच्छे से पता है और राजसी बुद्धि को जानने योग्य हर बात भली भाँति पता नहीं है, परंतु यहाँ सभी कुछ विपरीत हो गया है—तामसी बुद्धि वाला व्यक्ति तो अधर्म को ही धर्म मानकर बैठ जाता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि जो बुद्धि तमस् से आच्छादित है '**या बुद्धिः तमसावृता**' वह प्रत्येक चीज को विपरीत अर्थ से देखती है '**सर्वार्थान् विपरीतांश्च।**' बुद्धि के दो कार्य होते हैं—जानना और निष्कर्ष या निर्णय तक पहुँचना। जब बुद्धि विपरीत दृष्टि से कार्य करेगी तो किसी तथ्य के सत्य को जानने का उसका अभिप्राय भी गलत होगा, पद्धति भी गलत होगी एवं जो जाना गया है, उसके आधार पर जो निर्णय किया जा रहा है, वो भी गलत ही होगा।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसी बुद्धि अधर्म को ही धर्म मानने लगती है। इस संसाररूपी सागर से पार जाने के लिए धर्मरूपी पुल पर से गुजरना अनिवार्य हो जाता है। धर्माचरण ही सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ रखता है और आत्मिक जीवन की उन्नति को सुनिश्चित करता है। यदि जीवन में उन्नति न हो, आत्मिक संतोष न हो तो व्यक्ति को यथार्थ आनंद की प्राप्ति न हो सकेगी।

श्रीभगवान कहते हैं कि तामसी बुद्धि धर्म की पहचान ही गलत रीति से करती है और अधर्म को ही धर्म मानकर वैसा आचरण करने लग जाती है। साररूप में कहें तो जिस बुद्धि में अविवेक है, वह कभी भी यथार्थ निर्णय ले पाने की स्थिति में नहीं आ सकती; क्योंकि वह भ्रांति को ही सत्य मानकर बैठी है। *(क्रमशः)*

वृत्रासुर का अंत करने को महर्षि दधीचि ने अपनी अस्थियाँ तक दान में दे डालीं। उनका उदाहरण ऋषियों ने अपने शिष्यों के सम्मुख रखा। शिष्यों ने अपनी जिज्ञासा उनसे व्यक्त की कि इतना बड़ा त्याग महर्षि कैसे कर सके। उत्तर मिला—जब आत्मीयता का क्षेत्र विस्तृत होता है तो विश्व-कल्याण हेतु उदारमना अपना जीवन तक उत्सर्ग कर देते हैं। महर्षि दधीचि ने अपने जीवन को दान देकर उसी अतुल आत्मीयता का परिचय दिया है।

पात्रता की परीक्षा (पूर्वार्द्ध)

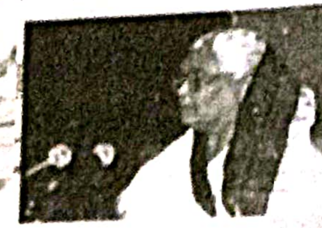

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह विशिष्टता है कि उनके चिंतन के भीतर हिमालय जैसी ऊँचाई भी है और समुद्र जैसी गहराई भी। जहाँ एक ओर उनका जीवन दर्शन, मानवीय व्यक्तित्व को व्यापकता प्रदान करता है तो वहीं दूसरी ओर उनकी संवेदना, मानवीय अंतःकरण को भावासिक्त करती है। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में वंदनीया माताजी, पूज्य गुरुदेव के अविराम तप का उल्लेख करते हुए पूज्य गुरुदेव के जीवन को ऋषितुल्य जीवन बताती हैं और यह बताती हैं कि उस स्थिति तक पहुँचने के लिए पूज्य गुरुदेव ने अपने शिष्यत्व की अतुलनीय परीक्षा दी थी। उसी पात्रता की परीक्षा से गुजरने के बाद साधक में महानता का अवतरण होता है। वंदनीया माताजी अपने स्वयं के जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि समर्पण के आधार पर ही साधक को समस्त विभूतियाँ हस्तगत हो पाती हैं और इस पथ पर चलने वालों को तीन एषणाओं से बचना अनिवार्य हो जाता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

गुरुदेव का अविराम तप

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।''

हमारे आत्मीय परिजनो!

वसंत पर्व पर गुरुजी ने दो वर्ष बाद दर्शन दिए। उन्होंने दो वर्ष तक जो तप किया, उसकी ऊर्जा ले करके आपके समक्ष उपस्थित हुए। क्या उनकी साधना यहीं खतम हो जाती है? नहीं, वह अनवरत चलती रहेगी। यह तो बीच में थोड़े दिन के लिए थोड़ा-सा विराम दिया गया था। वे तो आजीवन तप ही करते रहे हैं और तप ही करते रहेंगे। यों तो बीच-बीच में विराम भी लगता रहेगा, पर तप तो यथावत् चलता रहेगा।

क्यों साहब! क्यों चलता रहेगा? इस सारे संसार में जो विभीषकाएँ छाई हुई हैं, उनके निराकरण के लिए, उनके निवारण के लिए उनका तप निरंतर चलता रहेगा। तो क्या उसका निवारण हो जाएगा? हो जाएगा कि नहीं हो जाएगा, इसका कोई ठेका नहीं ले रखा है। होगा, हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता, लेकिन प्रयास जरूर है और वो चलता रहेगा। मैं तो आपसे ये कहना चाहती थी कि किसी बड़ी सत्ता से जुड़ जाने पर व्यक्ति कैसा महान हो जाता है और भगवान के समतुल्य पहुँच जाता है। संत के समतुल्य पहुँच जाता है।

भगवान नहीं भी कहें तो आप संत तो कह सकते हैं, आप ऋषि तो कह सकते हैं, इसमें दो राय

नहीं हैं। मैं उनसे जुड़ी हूँ और मैंने पाया है कि जो सच्चे हृदय से जुड़ जाता है, फिर वो चाहे नाला ही क्यों न हो, जो नदी में गिर जाता है तो वो नदी हो जाता है और नदी समुद्र में मिल जाती है तो समुद्र हो जाती है और जब झाड़ियाँ चंदन के पेड़ से लिपट जाती हैं, उनके समीप हो जाती हैं तो वे झाड़ियाँ भी सुगंधित हो जाती हैं।

शिष्य की परीक्षा

बेटे, लोकसेवी की भी यही स्थिति है। भक्त ने अपने को छोटा समझा है और भगवान से मिलने के लिए भगवान की हर इच्छा के साथ अपने को मिला दिया तो वो कौन हो गए? वो शिवाजी हो गए। कब हो गए? जब समर्थ गुरु रामदास ने यह कहा कि बेटे! मेरी आँखों में दरद है। क्या तू सिंहनी का दूध लाने में सफल होगा? उन्होंने कहा—"गुरुदेव! आप मुझे आजमा के तो देखिए, आप आज्ञा तो कीजिए।" उन्हें सिंहनी का दूध लाने के लिए जोखिम में डालने के लिए क्यों कहा? उनकी नीयत की परख करनी थी। उनको दूध की आवश्यकता थी क्या? उनको दरद था क्या? नहीं दरद नहीं था, तो भी उनको भेजा। जब लाने में वे समर्थ हुए तो समर्थ गुरु रामदास ने उनको अभय वरदान भी दिया और उन्होंने तलवार भी दी, जो कि शक्ति से उत्पन्न की हुई थी। वो उन्होंने उनको भेंट की। फिर वे कौन हो गए? शिवाजी हो गए।

निर्मल मन व्यक्ति संत से मिलने पर संत हो जाते हैं, क्योंकि उनकी शक्ति उनके अंदर आती हुई चली जाती है और जब वे संत से अलग होते हैं तो वो भी परिणाम देखे गए हैं कि जिस दिन अलग हो जाते हैं, उनका अहंकार ऊँचा बढ़ता हुआ चला जाता है और तब उनको धरातल पर भी जगह नहीं मिलती है और वो औंधे मुँह गिरते हैं। किसका-किसका हवाला दें।

अभी-अभी एक छोटा-सा बालक, छोटा-सा ही कहेंगे, अनायास ही उसके मन में एक अहंकार आ गया और उसने कहा कि हमको तो शांतिकुंज का मालिक होना चाहिए; क्योंकि अभी गुरुजी ने अपने प्रवचन में कहा है। अरे! शांतिकुंज के ही क्यों बेटे! आप तो उसके बनाए सारे संसार के, सूरज के और चाँद के, सबके मालिक बनिए शांतिकुंज तो एक छोटी-सी इमारत है। क्या इसी के लिए आप आए थे यहाँ? इसी के लिए आप गुरुजी की गोद में बैठे थे क्या? इसी के लिए क्या माँ का आँचल आपने थामा था? माँ का आँचल थामा है तो आपको अपना निर्मल मन करना पड़ेगा। कौन-सा निर्मल मन, वो निर्मल मन, जो विवेकानंद ने किया था और माँ शारदामणि की गोद में जीवन भर खेलते रहे।

आज भी जब वो समर्थ गुरु रामदास नहीं हैं, रामकृष्ण परमहंस नहीं हैं और विवेकानंद नहीं हैं,

---

ऋषि कणाद का जीवन अपरिग्रह की प्रतिमूर्ति था। भूमि पर पड़े अन्न के कणों को बीनकर वे अपनी क्षुधा की पूर्ति करते व उसी में संतुष्ट रहते।

उस राज्य के राजा ने उनसे प्रश्न किया—"ऋषिवर! क्या आपको कभी धन संग्रह की कामना नहीं होती?"

ऋषि कणाद ने उत्तर दिया—"राजन्! उदारमना लोगों का जीवन अपरिग्रही व परमार्थपरायण होना चाहिए। वे धनाध्यक्ष बनने को जन्म नहीं लेते, वरन आत्मिक विभूतियों के स्वामी बनते हैं। ये ही ऋषि-धर्म है।"

लेकिन उनकी यशगाथा अभी भी है और सारे संसार में है। चाहे कहीं भी आप जाइए, रामकृष्ण परमहंस की शक्ति आपको दिखाई पड़ेगी, विवेकानंद की शक्ति आपको पड़ेगी, पर कब? विवेकानंद स्वयं नहीं बने थे, बनाए गए थे। रामकृष्ण परमहंस ने शक्ति दी थी। कहीं वो शक्ति का दुरुपयोग करता तो? तो स्वामी विवेकानंद नहीं हो सकता था। तो बेटे! मैं आपसे यह कहना चाहती थी और यही मैं कह रही हूँ कि महान शक्ति से जुड़ जाने पर व्यक्ति महान हो जाता है। यदि आप चाहें तो आप भी ऐसा कर सकते हैं।

महानता कब आती है

बेटे, जुड़ने पर वो महानता हमारे जीवन में आई है और हम सिद्धांतों के लिए जिए हैं और सिद्धांतों के लिए ही मरेंगे। न पैसे के लिए जिए हैं, न यश के लिए जिए हैं, न वाहवाही के लिए जिए हैं। जो वाहवाही के लिए आते हैं, जो यश के लिए आते हैं, जो अपना यशगान कराने के लिए आते हैं, उनकी थोड़े दिन चमक-दमक तो रहती है, पर माहौल में थोड़ा-सा ही परिवर्तन होने पर थोड़े दिन में मालूम पड़ता है और फिर उनकी असलियत खुल जाती है। असलियत खुल जाने पर तो कहीं के भी नहीं रहते। अपनी जीवात्मा के सामने तो गिर ही जाते हैं, दुनिया के सामने गिरते हैं कि नहीं गिरते हैं? उसमें देर लगती है, लेकिन अपनी जीवात्मा के सामने व्यक्ति छोटा जरूर हो जाता है। उसकी जीवात्मा धिक्कारने लगती है।

तो क्यों साहब! शांतिकुंज में क्या ऐसे ही लोग आते हैं? नहीं साहब! ऐसे नहीं आते हैं। एक-से-एक अच्छे भी आते हैं और बुरे भी हो सकते हैं, क्योंकि पूर्वजन्म के संस्कार और इस जन्म के संस्कार, वातावरण का संस्कार, शिक्षा का संस्कार और जिस वातावरण में हमने जो शिक्षा पाई और जहाँ हम पैदा हुए, जहाँ हमने माता-पिता के संस्कार पाए, वो भी तो विद्यमान होते हैं और स्वयं के भी तो संस्कार विद्यमान होते हैं। अगले जन्म के भी विद्यमान होते हैं।

वो सारे-के-सारे जो संस्कार होते हैं, न मालूम पूर्वजन्म में कौन थे? और इस जन्म के जिस वातावरण में, माहौल में हम पले और रहे और जहाँ हमने शिक्षा-दीक्षा पाई, न मालूम वो क्या-क्या वातावरण था? कैसा था? वो भी तो छाप छोड़ता है। जो संतों से जुड़े हैं, उन्होंने बहुत कुछ पाया है और संत से पा करके जिन्होंने यह सोचा कि बस अब तो बन गया काम, अब तो हम हो गए पक्के। कहते हैं कि हम उनसे जुड़े हैं और करते कुछ हैं और कहते कुछ हैं। तो यह थोड़े ही दिन चलेगा, ज्यादा दिन नहीं चलेगा।

संत शक्ति देता भी है और ऐसा भी है कि वह क्रोधित भी होता है। कई बार संत के ऊपर आक्रमण करते हुए भी देखा गया है और सुना भी है और हुआ भी है और वे क्षमा भी करते रहे, लेकिन संत जिस दिन अंदर से हुंकार भरेगा, उस दिन वो औंधे मुँह गिरते ही नजर आएगा, मिट्टी में मिलता भी नजर आएगा। ये भी होगा और जिसको उठाया है, वे उठते हुए भी चले गए हैं। वह भी पाए जाते हैं और यह भी पाए जाते हैं।

वंदनीया माताजी का समर्पण

मैंने आपसे यह बताना चाहा कि देखिए मैं जुड़ी हुई हूँ। मैं पत्नी हूँ उनकी, लेकिन पत्नी होते हुए भी मेरे प्रति उनकी कितनी उच्च कोटि की भावनाएँ हैं, जो उन्होंने बना करके रखी हैं। आप सबको मालूम है कि वे मुझे माताजी कहते हैं। क्यों कहते हैं? आपने कभी विचार किया क्या? बेटे! इसमें एक गहराई आपको मालूम पड़ेगी कि पत्नी होते हुए भी मैंने दोनों ही भूमिकाएँ अदा की हैं, और भूमिकाएँ ही अदा नहीं की हैं, बल्कि सच्चे हृदय से मेरा समर्पण है।

यह समर्पण उनके हृदय में जगह किए हुए है। आम पत्नियाँ क्यों नहीं कर पाती हैं? इसलिए नहीं कर पातीं कि वास्तविक मन से उनका समर्पण नहीं होता। यही संबंध गुरु-शिष्य का है। गुरु के प्रति यदि शिष्य का सच्चा समर्पण है तो फिर तर्क और वितर्क की, गलतफहमी की कहीं भी कोई गुंजाइश नहीं होती।

एकलव्य ने साधना की थी और मिट्‌टी में से भी अपने गुरु को पैदा कर लिया था। भावना, निष्ठा और श्रद्धा, ये होती हैं, पत्थर के टुकड़े में से भगवान को पैदा करने वाली शक्ति। रामकृष्ण परमहंस ने पत्थर की मूर्ति में से काली माँ को प्रकट कर लिया जो कि उनके साथ खाती थी, भोजन करती थी और अपने बेटे को खिलाती थी। यह क्या था? यह समर्पण है। भगवान के प्रति, गुरु के प्रति यदि सच्चा समर्पण है तो हमारा हृदय निर्मल गंगाजल के तरीके से निर्मल और पवित्र होना चाहिए।

जब मन हमारा पवित्र होता है तो जैसा अभी मैंने बताया था कि नाला नदी में मिलकर नदी हो जाता है। सैकड़ों नाले इस गंगाजी में मिल गए और अपने को विसर्जित करके गंगाजी बन गए। आज हम और आप उसका पान करते हैं। गंगाजल को भर करके रखते हैं। क्यों नाले का पान करते हैं क्या? नाले का पान नहीं करते, उसके पानी में हमें दुर्गंध आती है और सड़ाँध आती है और हमको उसमें कीड़े नजर आते हैं। दुर्गंध नजर आती है टट्टी-पेशाब नजर आते हैं। किसमें? उस नाले में और जब वो नाला गंगाजी में मिल जाता है तो उसको हम पवित्र और निर्मल और गंगा माँ की जलधारा समझ करके उसका पान करते हैं, क्योंकि वो नाला नहीं रहा, वो गंगाजल हो गया।

इसका मतलब यही है कि जब हम महानता से जुड़ जाते हैं तो महान हो जाते हैं और जोड़ने से इनकार करते हैं, हट जाते हैं, अहंकार आ जाता है, अहं आ जाता है तो पतन भी हो जाता है।

पतन के तीन गुरु

पतन के तीन गुरु बताए गए हैं। कौन-कौन से गुरु बताए गए हैं? एक है—लोकैषणा, दूसरा है—वित्तैषणा और तीसरा है—पुत्रैषणा। लोकैषणा का मतलब होता है यश, यश पाना, यश पाना कि हम हैं तो कुछ नहीं पर यश, यश पाने की जो हवस होती है। तप और त्याग तो हमारे अंदर नहीं है, लेकिन हम तपस्वी जरूर कहलाएँ। हम ये तो

पाठक ध्यान दें

नए डाक नियमों के अनुसार अब बिना पिनकोड व मोबाइल नंबर के कोई डाक नहीं जा सकेगी।

कृपया सभी पाठक अपनी सदस्य संख्या, संपूर्ण नाम पते सहित, पिनकोड, मोबाइल, ई-मेल, व्हाट्सएप नंबर अखण्ड ज्योति संस्थान के पते पर डाक से, ई-मेल akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org पर अथवा व्हाट्सएप नं. 9927086290 पर तुरंत भेजने का अनुग्रह करें।

आगे से अपने सभी पत्र व्यवहार में पिनकोड, मोबाइल नंबर व व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें।

जरूर कहलाएँ कि अभी-अभी हिमालय से आए हैं। अभी-अभी हिमालय से आए क्या, तप किया है क्या? नहीं भाईसाहब तप तो नहीं किया, क्या किया है? यहाँ-वहाँ घूमे हैं, तो वे संत कैसे हो गए? फिर आप ऋषि कैसे हो गए? और तपस्वी कैसे हो गए?

ये जो लोकैषणा की इच्छा है, ये हवस विद्यमान रहती है तो गिरा देती है एक, और दूसरा वित्तैषणा का है, जो अंदर में ये भूख जगाती है कि किसी भौतिकता की दौड़ में हमको दौड़ना चाहिए। हमारा पहनावा-ओढ़ावा, वातावरण, घर का रहन-सहन, हमको वो आलीशान ढंग का हमको बनाना है, उस दौड़ में जब आगे नहीं देखता है, वो खींचता है, वो गिरता है और जब पाता नहीं है तो गिरता है और पा जाता है तो और भी ज्यादा गिर जाता है।

तीन एषणाओं से बचें

ये मैंने धन के संबंध में बताया, लोकैषणा के संबंध में बताया, एक पुत्रैषणा के संबंध में और बताना चाहूँगी। वो भी हवस ऐसी होती है कि वो किसी को भी नहीं देखती, न पड़ोसी को देखे, न बहन को देखे, न भानजी को देखे, बस जो भूत सवार हुआ तो ऐसा सवार हुआ, ये तीनों एषणाएँ मिट्टी में मिलाकर रख देती हैं।

वो चाहता है कि सामने वाले को गिरा करके और हमको महंत बनना चाहिए, नेता बनना चाहिए और ऐसा ही कहा कि गुरुजी हमको यहाँ का मालिक होना चाहिए। ऐसी-ऐसी अफवाहें उड़ाई गईं और बताया गया कि गुरुजी को कैंसर हो गया। मुझे इस बात से बड़ा दुःख होता है कि जो सुना गया और कइयों को यह भी कहते हुए पाया गया कि साहब! गुरुजी को तो कैंसर हो गया है और माताजी हैं, उनको सामने नहीं आने देना चाहती हैं। गुरुजी को यदि कुछ हो जाएगा तो फिर हम देख लेंगे।

अच्छा तो इसका मतलब यह है कि सारी जिंदगी मैं उनके साथ रही, साथ हूँ और मैं उनकी पत्नी हूँ, तो आप मुझसे ज्यादा हो सकते हैं? मैं नहीं हो सकती? मैं नहीं हूँ? आप हो सकते हैं। गुरुजी आपको प्रिय हैं, आपके पिता हैं, मेरे कोई नहीं हैं? जबकि जीवन और मरण में हम साथ-साथ हैं। लोगों ने तो यह भी कहा और हमने खुले दिल से कहा, अभी भी कहते हैं कि हम दो शरीर और एक प्राण हैं।

उसने यह भी कहा कि जमाई को दे दिया। बेटे को दे दिया। अरे तो आप सारा-का-सारा हिसाब देख लीजिए, यहाँ का देख लीजिए, वहाँ का देख लीजिए, मथुरा का देख लीजिए, आप देख लीजिए न। गंदगी फैलाने की अपेक्षा तो आप उसको देख लीजिए। आप सही पाएँ तो जो भी कुछ आप बुरे-से-बुरा कह सकते और कर सकते हों, वो हमारे साथ सलूक किया जाना चाहिए और यदि नहीं है तो फिर आपको अपने लिए भी गुंजाइश रखनी चाहिए।

छेड़ो मत और जब छेड़ो तो मैंने अभी कह दिया था कि या तो संत बोलता नहीं है और जब बोलता है तो उसका रोष फिर महादेव के तरीके से हो जाता है। जब तक शंकर जी को छेड़ा नहीं था तो वो शंकर जी तपस्वी थे और वैरागी थे तथा जिस समय उनको छेड़ा गया तो काम को उन्होंने भस्म ही कर दिया। उनका तांडव नृत्य तो देखा है, वही तांडव नृत्य मैं आपसे कहूँगी तो नहीं, चूँकि आप हमारे बच्चे हैं।

हम आपके और आप हमारे

बेटे, हम आपके हैं और आप हमारे हैं। बच्चा जब बड़ा होता है तो माँ से बिछड़कर चला जाता है, लेकिन जब छोटा होता है तब?

माँ गीले में सोती है और सूखे में बच्चे को सुलाती है और यह कहती है कि मेरा बच्चा एक दिन ऐसा बनेगा, हम से भी ऊँचा बनेगा। कौन कहती है? माँ कहती है। पिता कहता है कि हमारा जो बालक है, इसको हम अपने समकक्ष बनाएँगे और वही बालक जब माँ को लांछन लगा करके और पिता को दगा दे करके चला जाए तो माँ क्या कहेगी?

माँ फिर भी उसको आशीर्वाद ही देगी और यह कहेगी कि बेटे! हमने जो तेरे साथ किया था, वो हमारा फर्ज और कर्त्तव्य था। हमने तुझको बनाना चाहा था। हमने अपने मुकाबले का रखना चाहा था। हमने सोचा था कि हम तुझे गांधी जी के तरीके से बनाएँगे। हम तुझे विनोबा के तरीके से बनाएँगे, हम तुझे संत बनाएँगे, लेकिन हम क्या कर सकते हैं?

यह दुर्भाग्य उन लोगों का भी है और हमारा भी है कि हमने बनाया और वे चले गए। अच्छा बेटे! चले जाओ, भगवान आपको हजार हाथ दें। जितना आपने ख्वाहिश रखी है और दे। एक दिन जब आपका पेट भर जाएगा, जब आप पछताने लगेंगे तब आपका मन खुलेगा। पिता की और माता की हमेशा शुभकामनाएँ रही हैं, बच्चे के साथ आशीर्वाद रहा है। वही आशीर्वाद हमारा सबके साथ है, गुरुजी का है। निरंतर हमने सबको बनाया है और बनाते रहे हैं और बनाते रहेंगे।

गंदगी को हम निकाल देंगे

हमारे दृष्टिकोण में, हमारी भावनाओं में, कहीं भी, कोई भी तिल मात्र फरक आपको नहीं मिलेगा। हमको हरेक कोई अच्छा ही लगता है। आप कहेंगे तब आपको नजर नहीं आया, जिस दिन को यहाँ पैर रखा? अभी गुरुजी ने नहीं कहा था टमाटर होते हैं, अच्छे होते हैं, सड़ा होता है, उसमें से निकाल दिया जाता है बेटे! सब ठीक-ही-ठीक लग रहे थे, जब सड़ गया, गल गया तो फेंक दिया?

हाँ बेटे! वो भी हमको करना पड़ता है। काट-छाँट भी हमें करनी पड़ती है, काट-छाँट हम न करें तो क्या गंदगी को यहाँ रखेंगे क्या? गंदगी हम नहीं रखना चाहते हैं और न अब रखेंगे, न फिर रखेंगे और भी कोई होगा तो उसके प्रति भी यही होगा। जो होना चाहिए जो होता रहा है, कितने ही व्यक्ति यहाँ से जा चुके और आए भी, आए भी हैं बेचारे कैसे-कैसे अपना घर छोड़ के आए, नौकरी छोड़ के आए,

---

ईश्वरप्राप्ति का एकमात्र अवलंबन भक्ति ही है। उदार आत्मीयता से अनुप्राणित आदर्शवादी, परमार्थपरायणता में ही सच्ची भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं, जो मनुष्य को दिव्य बनाती है।

अभी सब ठीक है। होगी किसी की विकृति तो वो भी ऐसा हो सकता है, हट भी सकता है, जा भी सकता है और नहीं जाएगा तो निकाला भी जा सकता है। निकाल भी सकते हैं, उसको जरूर निकालेंगे।

इस तरीके से मैंने थोड़ा-सा ये हवाला दिया और यह कहा कि जब अपना उदाहरण दिया, कि जब मैं जुड़ी और बेटे! जिंदगी में कितना पाया है। कितना पाया है कि संपत्ति तो नहीं पाई, लेकिन मैंने बहुत बड़ा-बहुत बड़ा अनुदान, बहुत बड़ी संपत्ति मैंने गुणों के रूप में उनसे ग्रहण कर ली, और ऐसी कर ली।

बेटे! इस जीवन में तो क्या, जब-जब हम जन्म लेंगे यहाँ कहीं भी, वो हमारे साथ जाएगा। वो हम से हट नहीं सकता, यदि आप भी इसी तरीके से जुड़े तो आप भी उन गुणों की संपदा को पा सकते हैं। जो कि मैंने पाया है। मैंने पाया है और आपको तो दोनों ही देंगे, गुरुजी भी देंगे और मैं भी दूँगी। आपके लिए तो दो हो गए न? गुरुजी भी हो गए, माताजी भी हो गईं। बेटे! आप हमारे गुणों को लेना, आप उन महानताओं को लेना, उन सिद्धांतों को लेना, जिन सिद्धांतों को लेकर के हम आजीवन, अनवरत चलते रहे हैं और चलते रहेंगे।

यही आशीर्वाद, सद्गुणों की संपदा, देने के लिए हम आतुर हैं, और प्रत्येक अपने परिजनों से कहते हैं बेटे! लेना है तो हम से ये आशीर्वाद लीजिए, आप संपत्ति का आशीर्वाद मत लीजिए, आप संतान का आशीर्वाद मत लीजिए, वो तो मिल जाएगा, वो तो हो जाएगा; आपके भाग्य में होगा तो, लेकिन अभी तो हम जिंदा हैं, नहीं रहेंगे तो आपको पछताना पड़ेगा, और यह कहना पड़ेगा हम किसी संत से जुड़े थे, ऐसे महान संत से जुड़कर के और हम मिट्टी का ढेला ही बने रहे।

ऐसी माँ के गोद में खेल करके उसके आँचल की छाया के नीचे भी और हम ऐसे ही बने रह गए? जैसे हम थे, वैसे ही बने रह गए? नहीं बेटे! ये मत कहलाना तुम संत की संतान हो, संत की संतान और संत के गुण आपको लेने चाहिए, देने में हमारे में कोई कंजूसी नहीं है, और लेना-न-लेना ये आपके ऊपर निर्भर है, बस, इतनी थोड़ी-सी बात को कहकर के अपनी बात मैं समाप्त करती हूँ।

॥ ॐ शांति ॥

कैक्ट्स के पौधे ने हवा में गुलाब के पुष्प को झड़कर गिरते देखा तो व्यंग्य कसा—"तुम्हारा जीवन भी क्या जीवन रहा। हवा आई, गिराकर चली गई। मुझे देखो, कैसे अकड़कर खड़ा हूँ।" गुलाब का पुष्प हँसा व बोला—"भाई! आपने हवा के साथ मेरा गिरना तो देखा, पर यह न देखा कि हवा किस तरह मेरी सुगंध सब ओर फैलाकर चली गई। जीवन तो वही सार्थक कहा जाता है, जो लोक-कल्याणकारी कार्यों में लगता है।" अब कैक्ट्स के पास कहने को कोई शब्द न थे।

विश्वविद्यालय परिसर से –255

मानवीय उत्थान का आधार है विश्वविद्यालय

अखिल विश्व गायत्री परिवार के जन्मशताब्दी वर्ष के अंतर्गत देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित 'दधीचि अंगदान संकल्प अभियान' का गरिमामय आयोजन इस तथ्य का सशक्त उदाहरण रहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय केवल एक उच्च शिक्षण संस्थान नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों, मानवीय संवेदनाओं एवं राष्ट्रहितकारी अभियानों का प्रेरणाकेंद्र है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों को समकालीन सामाजिक आवश्यकताओं से जोड़ते हुए विश्वविद्यालय ने अंगदान जैसे लोक-मंगलकारी विषय पर समाज में जागरूकता एवं जनसहभागिता का प्रभावी संदेश दिया।

यह आयोजन शिक्षा, संस्कार, सेवा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समन्वय के माध्यम से मानवता के कल्याण के प्रति विश्वविद्यालय की सतत प्रतिबद्धता का सशक्त परिचायक बना। कार्यक्रम में भारत सरकार के केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री श्री जगत प्रकाश नड्डा मुख्य अतिथि तथा उत्तराखंड के मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने की।

कार्यक्रम के प्रारंभ में प्रतिकुलपति जी ने केंद्रीय मंत्री श्री जे.पी. नड्डा एवं मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी का पुष्पगुच्छ एवं अंगवस्त्र भेंटकर स्वागत एवं अभिनंदन किया। इसके उपरांत सभी अतिथियों ने प्रज्ञेश्वर महाकाल के दर्शन एवं वंदन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात दीप प्रज्वलन एवं देवपूजन के साथ मुख्य कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

अपने मुख्य अतिथि उद्बोधन में केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री श्री जगत प्रकाश नड्डा ने अंगदान को मानवता की सर्वोच्च सेवा बताते हुए कहा कि एक व्यक्ति का अंगदान अनेक लोगों को नया जीवन प्रदान कर सकता है। उन्होंने अधिकाधिक नागरिकों से इस पुनीत अभियान से जुड़ने तथा अंगदान का संकल्प लेने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि समाज में अंगदान के प्रति सकारात्मक जागरूकता विकसित करना समय की आवश्यकता है तथा इस दिशा में अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय का यह अभियान अत्यंत प्रेरणादायी है।

उत्तराखंड के मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी ने अपने संबोधन में कहा कि अंगदान वास्तव में जीवनदान का महादान है। उन्होंने दधीचि अंगदान संकल्प अभियान को समाज में सेवा, संवेदना एवं मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करने वाला महत्त्वपूर्ण जन-जागरण अभियान बताते हुए इसकी सराहना की। उन्होंने कहा कि महर्षि दधीचि के त्याग का संदेश आज भी समाज को लोक-मंगल के लिए प्रेरित करता है और प्रत्येक नागरिक को इस अभियान से जुड़ना चाहिए।

अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रतिकुलपति जी ने कहा कि महर्षि दधीचि का जीवन त्याग, समर्पण एवं लोक-कल्याण का अनुपम आदर्श है। जन्मशताब्दी वर्ष में संचालित यह अभियान केवल अंगदान का संकल्प नहीं, बल्कि मानवता के प्रति उत्तरदायित्व, सेवा-साधना एवं करुणा की राष्ट्रीय चेतना का अभियान है। उन्होंने उपस्थित सभी नागरिकों से अंगदान के प्रति सकारात्मक सोच

विकसित करने तथा इस जन-जागरण अभियान का सक्रिय सहभागी बनने का आह्वान किया।

रामकृष्ण मिशन, हरिद्वार के सचिव स्वामी दयामूर्त्यानंद ने उद्बोधन देते हुए कहा कि मानव जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य परोपकार एवं लोक-मंगल है। उन्होंने कहा कि महर्षि दधीचि का त्याग भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जो प्रत्येक व्यक्ति को समाज एवं मानवता के कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित करने की प्रेरणा देता है।

इस अवसर पर नोटो के अध्यक्ष ने कहा कि अंगदान किसी व्यक्ति के जीवन का अंत नहीं, बल्कि अनेक लोगों के लिए नए जीवन का प्रारंभ बन सकता है। उत्तराखंड सरकार के कैबिनेट मंत्री श्री मदन कौशिक ने अपने उद्बोधन में कहा कि दधीचि अंगदान संकल्प अभियान समाज में जन-जागरूकता का प्रभावी माध्यम सिद्ध होगा। उन्होंने अधिकाधिक लोगों से इस पुनीत अभियान से जुड़कर अंगदान का संकल्प लेने का आह्वान करते हुए कहा कि सेवा और संवेदना भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी पहचान है।

कार्यक्रम में एम्स ऋषिकेश की कार्यकारी निदेशक प्रो. (डॉ.) मीनू सिंह, उत्तराखंड सरकार के राज्यमंत्री श्री ओमप्रकाश जमदग्नि, पद्मश्री निलेश विनोदचंद्र मंडलेवाला, मेदांता के अध्यक्ष डॉ. अरविंद कुमार, नोटो के अध्यक्ष डॉ. अनिल कुमार सहित अनेक विशिष्ट अतिथि उपस्थित रहे। सभी अतिथियों ने अंगदान के प्रति व्यापक जन-जागरूकता विकसित करने का आह्वान किया तथा अभियान से संबंधित प्रकाशन का सामूहिक रूप से विमोचन किया।

कार्यक्रम के दौरान उपस्थित नागरिकों को अंगदान संकल्प के लिए प्रेरित किया गया। अंत में नोटो के अध्यक्ष डॉ. अनिल कुमार ने धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत करते हुए आयोजन से जुड़े सभी अतिथियों, चिकित्सकों, स्वयंसेवकों एवं प्रतिभागियों के प्रति आभार व्यक्त किया।

उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि समाज के व्यापक सहयोग से अंगदान का यह राष्ट्रीय अभियान जन-आंदोलन का स्वरूप ग्रहण करेगा। कार्यक्रम के समापन पर सभी विशिष्ट अतिथियों को स्मृति-चिह्न भेंटकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में चिकित्सक, अंग प्रत्यारोपण विशेषज्ञ, शिक्षाविद्, विश्वविद्यालय परिवार, गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ता, जनप्रतिनिधि तथा विभिन्न क्षेत्रों से आए गणमान्य नागरिक उपस्थित रहे। आयोजन के माध्यम से अंगदान के महत्त्व को जन-जन तक पहुँचाने तथा अधिकाधिक नागरिकों को इस महाअभियान से जोड़ने का सामूहिक संकल्प व्यक्त किया गया।

विगत दिनों विश्व नशा निषेध दिवस के अवसर पर अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं भारत सरकार के संयुक्त तत्त्वावधान में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में नशामुक्त भारत सप्ताह के अंतर्गत एक विशाल राष्ट्रीय जनजागरण कार्यक्रम का आयोजन संपन्न हुआ। भारत सरकार के इस प्रमुख राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत केंद्रीय स्तर की विभिन्न गतिविधियों का संचालन देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर से किया गया।

कार्यक्रम के माध्यम से नशामुक्त, स्वस्थ एवं संस्कारित भारत के निर्माण का सामूहिक संकल्प लिया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ विशाल नशामुक्ति जनजागरण रैली के साथ हुआ। रैली को भारत सरकार के माननीय केंद्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री श्री वीरेंद्र कुमार, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति तथा उत्तराखंड सरकार के उच्च शिक्षामंत्री डॉ. धन सिंह रावत ने संयुक्त रूप से हरी झंडी दिखाकर रवाना किया।

यह जनजागरण रैली विभिन्न प्रमुख मार्गों से होते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँची। रैली में विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, शिक्षकों, स्वयंसेवकों, गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं, सामाजिक संगठनों के प्रतिनिधियों तथा बड़ी संख्या में नागरिकों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता की।

प्रतिभागियों ने हाथों में नशामुक्ति संबंधी संदेशों से युक्त तख्तियाँ एवं बैनर लेकर समाज को नशे के दुष्परिणामों से अवगत कराया तथा व्यसनमुक्त जीवन अपनाने का संदेश दिया। पूरे मार्ग में नशा मुक्त भारत के प्रेरक नारों से जनजागरण का वातावरण निर्मित हुआ।

रैली के उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में आयोजित मुख्य कार्यक्रम की अध्यक्षता देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने की।

अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि आज आवश्यकता केवल नशामुक्त भारत की नहीं, बल्कि व्यसनमुक्त चेतना के निर्माण की है। जब युवावर्ग अपनी ऊर्जा को व्यसन से हटाकर सृजन, सेवा, संस्कार और राष्ट्र-निर्माण में लगाएगा, तभी स्वस्थ, समृद्ध एवं आत्मनिर्भर भारत का निर्माण संभव होगा। उन्होंने नशामुक्ति को जन-आंदोलन का स्वरूप देने का आह्वान करते हुए समाज के प्रत्येक वर्ग से इस अभियान में सक्रिय सहभागिता का आग्रह किया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री डॉ. वीरेंद्र कुमार ने अपने संबोधन में कहा कि नशामुक्त भारत का निर्माण केवल सरकारी प्रयासों से नहीं, बल्कि समाज की सक्रिय सहभागिता से ही संभव है। उन्होंने युवाओं का आह्वान किया कि वे स्वयं नशे से दूर रहें तथा दूसरों को भी इस दुष्प्रवृत्ति से मुक्त कराने में सहभागी बनें।

विशिष्ट अतिथि के रूप में परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष मुनि चिदानंद सरस्वती जी ने कहा कि आध्यात्मिकता ही व्यसनमुक्त जीवन का सबसे सशक्त आधार है। उन्होंने जीवन में योग, ध्यान, संस्कार एवं सेवा को अपनाने का संदेश देते हुए कहा कि आंतरिक शांति और आत्मिक जाग्रति से ही व्यक्ति हर प्रकार के व्यसन से मुक्त हो सकता है।

इस अवसर पर उत्तराखंड सरकार के उच्च शिक्षा मंत्री डॉ. धन सिंह रावत, अल्पसंख्यक कल्याण मंत्री श्री खजान दास तथा आपदा प्रबंधन मंत्री श्री विनय रोहिल्ला ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए नशामुक्त समाज के निर्माण के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता पर बल दिया। सभी वक्ताओं ने युवाओं से राष्ट्र-निर्माण, चरित्र-निर्माण एवं सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने का आह्वान किया।

कार्यक्रम में देशभर से आए शिक्षाविदों, चिकित्सकों, प्रशासनिक अधिकारियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, युवा प्रतिनिधियों, गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं तथा बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने सहभागिता की। उपस्थित जनसमूह ने नशा मुक्त भारत के राष्ट्रीय संकल्प को साकार करने हेतु सामूहिक शपथ ग्रहण करते हुए व्यसनमुक्त, स्वस्थ, जागरूक एवं संस्कारित समाज के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने का संकल्प लिया।

कार्यक्रम के अंत में सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री संदीप राठौर ने धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत करते हुए कार्यक्रम के सफल आयोजन में सहयोग देने वाले सभी अतिथियों, विभागों, संस्थाओं एवं प्रतिभागियों के प्रति आभार व्यक्त किया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में देव संस्कृति स्टूडेंट क्लब के तत्त्वावधान में विद्यार्थियों के लिए अभ्युदय कार्यक्रम का आयोजन हुआ। कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों को

विश्वविद्यालय में संचालित विभिन्न छात्र क्लबों की गतिविधियों से परिचित कराना तथा उनके व्यक्तित्व, नेतृत्व क्षमता एवं रचनात्मक प्रतिभा के विकास हेतु उपलब्ध अवसरों से अवगत कराना था।

कार्यक्रम के दौरान विश्वविद्यालय में संचालित विभिन्न छात्र क्लबों ने अपनी-अपनी गतिविधियों, उपलब्धियों एवं रचनात्मक प्रयासों का प्रभावशाली परिचय प्रस्तुत किया। क्लब प्रतिनिधियों ने बताया कि किस प्रकार विविध सह-पाठ्यक्रम एवं सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों में नेतृत्व क्षमता, टीम भावना, सामाजिक उत्तरदायित्व, सृजनात्मकता तथा सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास किया जा रहा है।

प्रस्तुतियों के माध्यम से नवप्रवेशी विद्यार्थियों को भी क्लबों से जुड़कर अपनी प्रतिभा निखारने हेतु प्रेरित किया गया। इस अवसर पर विद्यार्थियों ने अपने अनुभव साझा किए। उन्होंने बताया कि क्लब गतिविधियों ने उन्हें आत्मविश्वास, अभिव्यक्ति कौशल एवं सामाजिक सरोकारों के प्रति संवेदनशील बनने की प्रेरणा प्रदान की।

कार्यक्रम में उपस्थित छात्र-छात्राओं ने विभिन्न क्लबों की कार्यप्रणाली में गहरी रुचि दिखाई तथा सक्रिय सहभागिता का संकल्प व्यक्त किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने विद्यार्थियों का उत्साहवर्द्धन करते हुए कहा कि विश्वविद्यालय केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करने का केंद्र नहीं है, बल्कि जीवन-मूल्यों, नेतृत्व क्षमता, सेवा भावना एवं समग्र व्यक्तित्व निर्माण की सशक्त प्रयोगशाला भी है।

उन्होंने विद्यार्थियों से आह्वान किया कि वे अपनी रुचि एवं प्रतिभा के अनुरूप विभिन्न क्लबों से जुड़कर स्वयं के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ समाज एवं राष्ट्र-निर्माण में भी सक्रिय भूमिका निभाएँ।

विगत दिनों रूस से आए प्रतिनिधिमंडल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण कर भारतीय आध्यात्मिक परंपरा, संस्कृति एवं जीवन-मूल्यों का निकट से अध्ययन किया। प्रतिनिधिमंडल ने शांतिकुंज के आध्यात्मिक वातावरण, साधना-संस्कार आधारित जीवनशैली तथा विभिन्न रचनात्मक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का अवलोकन किया। इस अवसर पर उन्हें वैज्ञानिक अध्यात्म के माध्यम से व्यक्तित्व निर्माण एवं समाज-निर्माण के लिए संचालित विविध आयामों की विस्तृत जानकारी भी प्रदान की गई।

भ्रमण के दौरान प्रतिनिधिमंडल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भी अवलोकन किया, जहाँ उनकी भेंट विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से हुई। प्रतिकुलपति जी ने प्रतिनिधियों के साथ संवाद करते हुए भारतीय संस्कृति, अध्यात्म एवं सनातन ज्ञान-परंपरा की वैश्विक प्रासंगिकता पर विस्तार से प्रकाश डाला।

उन्होंने बताया कि भारत की प्राचीन ज्ञान-संपदा केवल आध्यात्मिक उन्नति का ही मार्ग नहीं दिखाती, बल्कि वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान हेतु भी समग्र एवं मानवीय दृष्टिकोण प्रदान करती है। रूसी प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय की मूल्याधारित शिक्षा व्यवस्था की मुक्तकंठ से सराहना की।

उन्होंने अपने अनुभवों को अत्यंत प्रेरणादायी एवं जीवनोपयोगी बताते हुए कहा कि यहाँ से उन्हें शांति, सद्भाव, मानवीय एकता एवं समग्र विकास का ऐसा सार्वभौमिक संदेश प्राप्त हुआ, जो संपूर्ण विश्व के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

विगत दिनों हिमाचल प्रदेश के सोलन स्थित डॉ. वाई.एस. परमार यूनिवर्सिटी ऑफ हॉर्टिकल्चर एंड फॉरेस्ट्री के कुलपति प्रो. (डॉ.) एच.एस. बवेजा के नेतृत्व में प्राध्यापकों के प्रतिनिधिमंडल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया।

इस अवसर पर प्रतिनिधिमंडल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट कर विश्वविद्यालय की शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं मूल्याधारित गतिविधियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की।

भेंट के दौरान प्रतिकुलपति जी ने भारतीय ज्ञान-परंपरा, वैज्ञानिक अध्यात्म, संस्कारनिष्ठ शिक्षा तथा व्यक्तित्व निर्माण पर आधारित देव संस्कृति विश्वविद्यालय की विशिष्ट शिक्षण-प्रणाली से प्रतिनिधिमंडल को अवगत कराया।

उन्होंने बताया कि विश्वविद्यालय आधुनिक शिक्षा और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के समन्वय के माध्यम से ऐसे उत्तरदायी एवं संवेदनशील नागरिक तैयार करने का प्रयास कर रहा है, जो समाज एवं राष्ट्र के समग्र विकास में प्रभावी भूमिका निभा सकें। भ्रमण के दौरान प्रतिनिधिमंडल ने विश्वविद्यालय परिसर का अवलोकन करते हुए विभिन्न शैक्षणिक, आध्यात्मिक, शोध एवं सामाजिक गतिविधियों को निकट से देखा।

इस अवसर पर दोनों संस्थानों के मध्य शिक्षा, अनुसंधान, भारतीय ज्ञान-परंपरा, प्राकृतिक संसाधन संरक्षण तथा भावी शैक्षणिक सहयोग की संभावनाओं पर भी सार्थक विचार-विमर्श हुआ। प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने अपने अनुभव साझा करते हुए कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय आधुनिक शिक्षा, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के समन्वय का एक प्रेरणादायी एवं अनुकरणीय मॉडल प्रस्तुत कर रहा है। □

महाराज रंतिदेव के राज्य में दुर्भिक्ष फैला। प्रजा के कल्याण के भाव से रंतिदेव ने 48 दिन का अनुष्ठान रखा। अनुष्ठान निराहार था। अनुष्ठान की समाप्ति पर जव वे पारायण करने बैठे तो एक भिक्षुक वहाँ आ गया। रंतिदेव के पास 4 रोटियाँ थीं—उन्होंने उसमें से एक भिक्षुक को दे दी। भिक्षुक के जाने के बाद वे पुनः भोजन करने बैठे थे कि एक व्यक्ति, चार कुत्तों को लेकर वहाँ आ गया।

राजा ने अपना शेष अन्न भी उसे व उसके कुत्तों को दे दिया व स्वयं भूखे रह गए। उनकी त्याग की इस भावना को देखकर वह व्यक्ति, इंद्रदेव के रूप में प्रकट हुआ व उनसे बोला—"महाराज! आपकी त्याग की भावना अपरंपार है। आपको भगवान स्वर्ग के समस्त वैभवों का अधिकारी बनाएँ।" रंतिदेव यह सुनकर बोले—

"न त्वहम् कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनाम् आर्त्तनाशनम्॥

"हे देवराज! न तो मैं राज्य चाहता हूँ और न ही मेरी स्वर्गलोक जाने की कोई इच्छा या कामना है। मेरी तो बस, एक यही कामना है कि मैं सदा-सर्वदा दुःखी-पीड़ितों को उनके कष्टों से मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील रहूँ।"

भव्य भारत के चार स्तंभ—ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा

भव्य भारत के चार स्तंभ—ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा भविष्य में और अधिक सुदृढ़ व सशक्त होंगे। इन्हीं चारों के बल पर भारत भावी युग में विश्व में अपने गौरव व गरिमा की स्थापना करेगा। भविष्य में उज्ज्वल राष्ट्रीय जीवन का आधार यही है। पुरातन युग में देश इन्हीं के बल पर विश्व के शिखर पर पहुँचा था, नवीन युग में भी यही होने वाला है। भारतीय संस्कृति का स्वर्णिम सत्य इसी कथा को कहता है। तब इन चारों स्तंभों से जुड़े गुण व कर्म को वर्ण के रूप में वर्गीकृत किया गया था। बाद में इस सांस्कृतिक वर्गीकरण ने वर्ण को जाति समझने की भ्रांति उत्पन्न कर दी।

हालाँकि जाति का संबंध जन्म से है, जबकि वर्ण का संबंध गुण व कर्म से है। चार वर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण हैं। ज्ञानप्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति—'ब्राह्मण', शौर्य की प्रधानता वाले व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति—'क्षत्रिय'। उद्योग से जीवन को उपयोगी बनाने वाले व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व को 'वैश्य' कहा गया। सेवा से जन-जन को सुविधा प्रदान करने वाले व्यक्ति व उनके व्यक्तित्व को 'शूद्र' कहा गया।

इनमें से कोई बड़ा या छोटा नहीं है। किसी की महिमा किसी से कम या अधिक नहीं है। आज भी ये वर्ण या वर्ग जीवन में विद्यमान हैं। इनके गुणों व कर्मों से राष्ट्र व समाज सशक्त होता है। शिक्षक-वैज्ञानिक, लेखक-विचारक—जो अपने ज्ञान के विविध रूपों से राष्ट्र व समाज को सशक्त करते हैं, ब्राह्मण हैं। देश को आंतरिक व बाहरी सुरक्षा प्रदान करने वाले पुलिस व फौज के सैनिक सबके सब क्षत्रिय हैं। यह वर्ग शौर्य, साहस व पराक्रम का मूर्तिमान स्वरूप है। उद्योग, व्यापार से जीवन के लिए उपयोगी उत्पादों का निर्माण करने वाले, क्रय-विक्रय से इन्हें घर-घर पहुँचाने वाले सभी वैश्य हैं।

अपने श्रम से हर समय सबकी सहायता को, सबकी सुविधा को अपनी साधना मानने वाला वर्ग शूद्र है। यह अपने छोटे-छोटे या क्षुद्र कार्यों से महानता के सभी प्रतिमान रचते हैं। इनके बिना हम सबका जीवन एक पल के लिए भी असंभव हो जाएगा। इन्हें भला किस तरह कम आँका जा सकता है? लेकिन समय की विडंबना ने समझदारी का हरण करके इन शब्दों को जाति-सूचक मानकर समाज में विखंडन व भेद पैदा कर दिया। यह विकृति विद्वेष व वैमनस्य का आधार बन गई।

भारतीय संस्कृति का स्वर्णिम सत्य इसी कथा को कहता है कि जाति का संबंध जन्म से है, जबकि वर्ण का संबंध गुण व कर्म से है। चार वर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण हैं।

ज्ञानदाता अपने सभी रूपों में मानव समाज की ज्ञानेंद्रियाँ हैं। अपने शौर्य के सभी रूपों से मानव जीवन व मानव समाज को संरक्षण देने वाले, इसकी प्राण-क्षमता को सुरक्षित-संवर्द्धित करने वाली जीवनीशक्ति हैं। जबकि अपनी सामर्थ्य से मानव जीवन व समाज को पोषित करने वाला, पोषण देने वाला वर्ग स्वाद व स्वास्थ्य से भरपूर पोषक तत्त्व है। अपनी सक्रियता-क्रियाशीलता के

द्वारा मानव जीवन व मानव समाज को जाग्रत-जीवंत रखने वाली कर्मेंद्रियाँ हैं।

यदि मानव जीवन व मानव समाज को शरीर माना जाए, तो इनमें से कोई भी न तो किसी से कम है और न उसकी उपयोगिता से इनकार किया जा सकता है। अपने स्वयं के जीवन में शरीर के इन सभी अंगों के कार्य व उपयोगिता का महत्त्व-व्यथा, वेदना व व्याधि होने पर आसानी से पता चल जाता है। तब हम भागे-भागे इनको शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ करने के लिए, आरोग्य प्रदान करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। फिर ये ज्ञानेंद्रियाँ हों या कर्मेंद्रियाँ, जीवनीशक्ति हो या पोषण सामग्री—इन सभी के सम्मिलन से हम स्वस्थ, निरोगी, सक्रिय व क्षमतासंपन्न बनते हैं।

जो सत्य हमें अपने शरीर के संदर्भ में आसानी से समझ में आ गया, उसे समाज व राष्ट्र के संदर्भ में भी समझा जाना चाहिए। भारत की धरती का प्रत्येक कण समान रूप से महिमान्वित व वंदनीय है, क्योंकि यह हमारी प्यारी भारतमाता की चेतना से संपन्न एवं उनकी ऊर्जा से ऊर्जावान है। माँ के आँचल का हर कोना पावन है। उसके चरणों में झुकने से, माथा नवाने से हम धन्य होते हैं। उसके भव्य भाल को देखकर हम सभी गौरवान्वित होते हैं। इस सत्य की अद्‌भुत अनुभूति हमें प्रसन्नता से भर देती है कि स्वयं महासागर हमारी भारतमाता के पाँव पखारकर पावन होता है। उसके मस्तक पर मुकुट बनकर शोभायमान हिमालय के धवल-उत्तुंग शिखर, जब प्रातः सूर्य की किरणों से स्वर्णिम होते हैं, तो उनकी आभा व प्रभा से विश्व प्रकाशित होता है।

क्षणभर के लिए भी यदि हमें इस सत्य की अनुभूति हो जाए, तो हमारी भेद-बुद्धि, विखंडन वाला व्यवहार हमसे छूटे बिना न रहेगा। हम समुद्रतट के वासी हैं या हिमालय-क्षेत्र के निवासी हैं—हम सब हैं तो भारतवासी ही। गोदावरी का तट हो या गंगा का किनारा, सब कुछ है तो भारतमाता के आँचल की छाँह में सुरक्षित। क्षेत्र, जाति, वंश, भाषा के बाहरी भेदों से हम सबकी आंतरिक पहचान बदल तो नहीं जाती। भारत देश की संतानें, भारतमाता के पुत्र व पुत्रियाँ, जब इस परिचय व पहचान को अपनाएँगे; तब हम सबकी समवेत सक्रियता भारतमाता की सामर्थ्य के रूप में प्रकट होगी।

भारत देश की राष्ट्रीयता, उसकी संस्कृति के सनातन सत्य में है। हम स्वयं शिव व उनके परिवार के द्वारा सुपोषित व संरक्षित हैं। भारत देश के उत्तर में स्वयं 'शिव' अपना त्रिशूल थामे तप-निरत हैं। दक्षिण में उनके ज्येष्ठपुत्र देव-सेनापति 'कार्तिकेय' हमें दैवी गुणों के लिए प्रेरित करते हैं। पूर्व के क्षेत्र में 'माता सिंहवाहिनी शक्ति' स्वयं हमारे संरक्षण के लिए हैं। पश्चिम दिशा में बुद्धिप्रदाता 'गणेश' सभी को बुद्धि का दान देने के लिए तत्पर हैं।

ज्ञानप्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति—'ब्राह्मण', शौर्य की प्रधानता वाले व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति—'क्षत्रिय'। उद्योग से जीवन को उपयोगी बनाने वाले व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व को 'वैश्य' कहा गया। सेवा से जन-जन को सुविधा प्रदान करने वाले व्यक्ति व उनके व्यक्तित्व को 'शूद्र' कहा गया। इनमें से कोई बड़ा या छोटा नहीं है। किसी की महिमा किसी से कम या अधिक नहीं है।

यही भारत का सत्य परिचय है; जिसका हर गाँव, प्रत्येक वन, पर्वत, नदीतट, राम-कृष्ण के रंग में रँगा है। स्थल-स्थल पर जहाँ विष्णु का वास

एवं ऋषि-मुनियों का निवास रहा है। विदेशियों द्वारा अपने इतिहास के पन्नों में फेर-बदल कर देने से हमारी संस्कृति का सनातन सत्य तो नहीं बदलेगा। आक्रमणकारी और घुसपैठिए आए, उन्होंने हम सबको बहकाने की कोशिश की, इन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली। हम आपस में लड़ते रहे और ये ठहाके लगाते रहे।

बस, अब यह सब बहुत हो चुका। भावी युग की भवितव्यता में अनेकों नए सत्य प्रकट होने को हैं। ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा हम सब भारतवासियों के गुण-कर्म बनेंगे। तब जाति का दंभ, वंश का अभिमान अपने लिए कोई भी स्थान न खोज पाएगा। व्यक्ति का परिचय, उसकी पहचान उसके व्यक्तित्व से होगी। उसके अपने गुण व कर्मों से होगी।

भारतभूमि में फिर से नररत्न-देवमानव प्रकट होंगे। महर्षि व्यास, धन्वंतरि, चरक, सुश्रुत, आर्यभट का ज्ञान फिर से नवीन भारत को ज्ञान का नवीन गौरव प्रदान करेगा। छत्रपति शिवाजी, वीरवर राणा प्रताप, रानी चेनम्मा, रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य से फिर भारतमाता शौर्य के नवीन प्रतिमान रचेंगी। परशुराम का पराक्रम भारतमाता की ओर आँखे तरेरने वाले शत्रुओं की आँखों को फोड़ने व नोचने में संकोच न करेगा।

उद्योग व व्यापार करने वाले निजहित से राष्ट्रहित को अधिक मानेंगे। राष्ट्रीय जीवन को पोषित करते हुए विश्व में वे शीर्ष स्थान प्राप्त करेंगे। भारत का उद्योग व व्यापार विश्वव्यापी प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। सेवा-साधना करने वालों की सेवा-सधना ऐसी सधेगी कि उनके चरणों में राष्ट्र की विभूतियाँ स्वयं सिर नवाएँगी।

ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा के नए प्रतिमान हमी को रचने हैं। हम सबको स्वयं में छिपी हुई इनकी क्षमताओं, विशिष्टताओं की परख करनी है। इन्हें पहचानना है। इन्हें प्रकट करना है। हममें से कोई भी न तो नकारा है और न निरर्थक। हममें से कोई भी निरुपयोगी भी नहीं है।

सृजन करने वाले विधाता ने हममें से हरेक को अलौकिक विभूति के वरदान दिए हैं। बस, हम इन्हें खोज नहीं पा रहे हैं। इन्हें तलाश व तराश नहीं पा रहे हैं। इसका कारण हमारे जीवन की सही दिशा न होना है। दिशा सुधरेगी, तो दशा सँवरेगी। अगले वर्षों में इसके सुयोग-संयोग स्वतः सामने आएँगे। हम सब स्वयं की विशेषताओं, विशिष्टताओं को पहचानने-परखने एवं प्रकट करने में समर्थ होंगे। हममें हुआ बदलाव, युग को स्वयं बदल देगा। **'हम बदलेंगे-युग बदलेगा'**—युगऋषि का यह युगमंत्र सब तरफ साकार होता हुआ दिखाई देगा।

भावी युग की भवितव्यता में अनेक नए सत्य प्रकट होने को हैं। ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा हम सब भारतवासियों के गुण-कर्म बनेंगे। तब जाति का दंभ, वंश का अभिमान अपने लिए कोई भी स्थान न खोज पाएगा। व्यक्ति का परिचय, उसकी पहचान उसके व्यक्तित्व से होगी। उसके अपने गुण व कर्मों से होगी। भारतभूमि में फिर से नररत्न-देवमानव प्रकट होंगे।

भारत के भविष्य में ही विश्व का भविष्य है। ऐसा इसलिए है; क्योंकि भारत देश-भारतभूमि-भारतमाता के पास ही आध्यात्मिक ऊर्जा की अलौकिक निधि है; जिसे अगले दिनों ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा के सभी रूपों में प्रकट होना है। इसी के बल पर विश्व राष्ट्र का स्वरूप व विधान बनेगा। □

अपनों से अपनी बात

सतयुग की वापसी

भारतीय संस्कृति में समय को चार युगों में बाँटा गया है—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। वर्तमान समय कलियुग का है, पर ऐसे समय में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का 'सतयुग की वापसी' का उद्‌घोष लोगों को अचंभित और आश्चर्यचकित करता है। वर्तमान समय की विकट परिस्थितियों को देखकर सतयुग की वापसी को लेकर लोगों का आशंकित, अचंभित और आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक भी है।

आज के दौर में चारों तरफ अनीति, असत्य, युद्ध, प्रदूषण, स्वार्थ और अशांति को देखकर मन में प्रश्न उठता है कि सतयुग कैसे आएगा? अभी तो घोर कलिकाल है और ऐसे समय में सतयुग की वापसी की बातें करना कपोल-कल्पना से अधिक कुछ नहीं लगता। जब समुद्र शांत हो उस समय सुनामी की बातें करना भी कपोल-कल्पना ही लगता है; क्योंकि सामान्य जनों में वह दृष्टि नहीं होती, जो एक मौसम-विज्ञानी और भू-विज्ञानी में होती है।

मौसम विज्ञान के विशेषज्ञ मौसम-विज्ञानी समुद्र के गर्भ में सूक्ष्मरूप से होने वाले हलचल और मौसम को भाँपकर समुद्र में भीषण तूफान आने से पूर्व ही यह जान लेते हैं कि समुद्र में भीषण तूफान आने वाला है और उस तूफान की चपेट में समुद्र के किनारे बसे नगर आने वाले हैं।

इस आकलन से लोगों को समुद्रतट से निकलकर किसी सुरक्षित जगह पर निकल भागने का अवसर भी मिल जाता है और वह समुद्र जो शांत दिखाई पड़ रहा था, सामान्य दिखाई पड़ रहा था, उसमें अचानक बड़ी ऊँची-ऊँची और भयावह, डरावनी लहरें उठने लगती हैं और पलभर में ही वह समुद्र के किनारे बसे नगरों को लील लेती हैं।

उसी प्रकार कलिकाल में सतयुग की वापसी की बातें भी सामान्य जन को कपोल-कल्पना के समान ही दिखाई पड़ती हैं, पर जिनके पास उच्च आध्यात्मिक दृष्टि उपलब्ध है, वे अपनी सूक्ष्म, गहन और दिव्यदृष्टि से काल के प्रवाह को भाँप लेते हैं, जान लेते हैं, देख लेते हैं, तभी वे किसी होने वाली बड़ी सुखद घटना को सूक्ष्मजगत् में घटते हुए समय से पूर्व ही देख लेते हैं और तभी मानव हित में उसकी उद्‌घोषणा करते हैं, और उसकी तैयारी भी।

महायोगी श्री अरविंद ने भी इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि—'अब कलियुग का अंत हो रहा है और जीर्ण-शीर्ण विचारों का ध्वंस हो रहा है। अब वह समय आ पहुँचा, जबकि उन्नति और विकास के कार्यों का आरंभ किया जाए। ठीक यही समय आने वाले सतयुग की तैयारी करने का है।'

परमपूज्य गुरुदेव ने भी उसी आध्यात्मिक दृष्टि से देखकर 'सतयुग की वापसी' और '21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य' का उद्‌घोष किया था। उनका स्पष्ट मत था कि हम संधिकाल से गुजर रहे हैं, जहाँ पुरानी सड़ी-गली मान्यताएँ ध्वस्त होंगी और एक नए युग अर्थात सतयुग का उदय होगा। एक नई और दिव्य संस्कृति का उदय होगा।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार, सतयुग का अर्थ केवल पंचांग के हिसाब से आने वाला कोई समय नहीं है, वरन सतयुग का अर्थ है—सत्य का युग। जब मनुष्य के विचारों में सत्य, हृदय में करुणा

और व्यवहार में शुचिता (पवित्रता) आ जाएगी, तभी सतयुग का उदय होगा। उन्होंने कहा था—

हम बदलेंगे, युग बदलेगा।
हम सुधरेंगे, युग सुधरेगा॥

अब प्रश्न यह भी उठता है कि कैसी होगी सतयुग की दुनिया? क्या होगी सतयुग की विशेषताएँ? सतयुग की दुनिया एक ऐसी दुनिया होगी, जो सौंदर्य, शांति, समृद्धि और आनंद से भरी होगी।

एक ऐसी दुनिया जिस पर किसी राष्ट्र विशेष का आधिपत्य न होगा। यह एक ऐसी दुनिया होगी, जहाँ सब लोग परस्पर प्रेम और प्रीतिपूर्वक रहेंगे। सभी लोग पूरी स्वतंत्रता से विश्व-नागरिक बनकर एकमात्र सत्ता—परमसत्य की आज्ञा का पालन करते हुए रह सकेंगे। यह एक ऐसी दुनिया होगी, जहाँ मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोद की अपेक्षा, आत्मा की आवश्यकताओं और प्रगति को अधिक महत्त्व दिया जाएगा।

जहाँ लोग देहपरायण जीवन के बजाय आत्मपरायण जीवन जीना पसंद करेंगे। शिक्षा भी यहाँ परीक्षाओं में पास होने, प्रमाणपत्र पाने अथवा ऊँचे पद पाने के लिए नहीं दी जाएगी, बल्कि ऐसी संस्कारयुक्त शिक्षा दी जाएगी, जो मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक क्षमताओं को बढ़ाकर उनके समग्र विकास में, सर्वांगीण विकास में सहायता देगी।

सामान्य अवस्था में मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवन के सुखों व शक्तियों के बढ़ावे में नहीं, बल्कि कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों की वृद्धि में अभिव्यक्ति पाएगी। भौतिक संपत्ति तथा सामाजिक पद की अपेक्षा व्यक्तित्व का अधिक मूल्य होगा।

यहाँ पर काम आजीविका के लिए नहीं, बल्कि अपने आप को अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा संभावनाओं को विकसित करने के लिए होगा, साथ ही यह काम पूरे समुदाय के लिए भी होगा। दूसरी ओर समुदाय हरेक के निर्वाह तथा कार्यक्षेत्र का प्रबंध करेगा।

संक्षेप में यह एक ऐसा स्थान होगा, जहाँ मानव-संबंध, जो प्रायः एकांतिक रूप से प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित होते हैं, वे अधिक अच्छा करने की स्पर्धा तथा सहयोग में और भ्रातृ-भाव में बदल जाएँगे।

आध्यात्मिक जीवन और भौतिक जीवन में कोई विरोध अथवा विभाजन नहीं रह जाएगा; क्योंकि लोगों में यह मान्यता गहराई से परिपुष्ट होगी कि जीवन और आत्मा एक ही हैं और भौतिक काम में और उस काम के द्वारा ही आत्मा की उच्च अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेव ने अपनी पुस्तक 'सतयुग की वापसी' और अन्य पुस्तकों में सतयुग की दुनिया का जो खाका खींचा है, वह भाव-संवेदना का जागरण, वैचारिक क्रांति, नारी शक्ति का जागरण, ग्राम तीर्थ और स्वावलंबन, एक विश्व, एक भाषा, एक संस्कृति आदि बिंदुओं पर आधारित है। सतयुग की दुनिया में हथियारों से नहीं, बल्कि विचारों से शांति आएगी।

मनुष्य की बुद्धि विनाश से हटकर सृजन की ओर लगेगी। लोग स्वार्थ की जगह परमार्थ को प्रधानता देंगे। अंधविश्वास और पाखंड समाप्त हो जाएँगे और धर्म का वास्तविक, वैज्ञानिक स्वरूप सामने आएगा।

सतयुग की दुनिया में विज्ञान और अध्यात्म का मिलन होगा। अभी विज्ञान भौतिक सुखों की खोज तक सीमित है, लेकिन सतयुग में विज्ञान 'चेतना' पर शोध करेगा। गायत्री महाविज्ञान के माध्यम से मनुष्य अपनी सुप्त शक्तियों को जाग्रत करना सीखेगा, जिससे रोग, शोक और दारिद्र्य का अंत होगा।

चहुँओर सुख-शांति, सत्य, समृद्धि, सौंदर्य और आनंद की अभिवृद्धि होगी और उनकी अभिव्यक्ति भी होगी।

पूज्य गुरुदेव ने स्पष्ट किया है कि सतयुग का मार्ग 'नारी' प्रशस्त करेगी। महिलाओं को समाज का नेतृत्व करते देखा जाएगा। एक विश्व, एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति का प्रावधान होगा। जाति, लिंग, वर्ग और धन की विषमता समाप्त होगी और 'मृदुता' व 'ममता' जैसे गुण विश्व राजनीति और अर्थतंत्र का आधार बनेंगे।

सतयुग में शहरों की भाग-दौड़ कम होगी। लोग सादगीपूर्ण जीवन अपनाएँगे। 'ग्राम तीर्थ' की अवधारणा साकार होगी, जहाँ गाँव आत्मनिर्भर और प्रकृति के करीब होंगे। 'विलासिता' के स्थान पर 'शालीनता' को गौरव का प्रतीक माना जाएगा।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार मनुष्य की बुद्धि में सात्त्विकता का प्रवेश होगा। जो लोग आज विनाशकारी सोच रखते हैं, वे धीरे-धीरे रचनात्मक कार्यों की ओर मुड़ेंगे।

पूरी दुनिया एक 'विश्व राष्ट्र' की तरह रहेगी और 'वसुधैव कुटुंबकम्' अर्थात 'पूरा विश्व एक परिवार है' का स्वप्न साकार होगा। विभिन्न राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाएँ केवल प्रशासनिक कार्यों के लिए होंगी, हृदय से पूरा विश्व एक परिवार की तरह रहेगा। प्रेम और सहयोग की एक वैश्विक संस्कृति का उदय होगा।

सामूहिक गायत्री-जप से वातावरण में ऐसी सकारात्मक ऊर्जा पैदा होगी, जो लोगों की बुद्धि को शुद्ध करेगी। बुद्धि शुद्ध होने से मनुष्य की सोच सकारात्मक होगी, सोच सकारात्मक होने से उसके कर्म बदलेंगे और कर्मों के बदलने से संसार का स्वरूप बदल जाएगा। परंतु ऋषिवर ने, गुरुवर ने यह चेतावनी भी दी है कि सतयुग इतनी आसानी से नहीं आएगा। जैसे नए भवन के निर्माण के लिए पुराने खंडहर को ढहाना पड़ता है, वैसे ही कलियुगी बुराइयों के विनाश के लिए प्रकृति कठोर कदम उठाएगी।

महाविनाश के बाद जो शेष बचेगा, वह शुद्ध होगा और उसी नींव पर सतयुग की स्वर्ण-अट्टालिका खड़ी होगी, पर धरा पर सतयुग की वापसी अथवा सतयुग के आगमन की तैयारी में हमारी-आपकी भूमिका क्या होगी?

यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है व जिसके उत्तर में गुरुवर ने यह स्पष्ट किया है कि हमें केवल दर्शक, मूकदर्शक बने नहीं रहना है। उन्होंने आह्वान किया है कि जो इस महापरिवर्तन में सहायक बनना चाहते हैं, उन्हें 'युगशिल्पी' बनना होगा। उन्हें आत्मपरिष्कार के द्वारा अपनी कमियों को दूर करना होगा।

गायत्री और यज्ञ अर्थात सद्ज्ञान और सत्कर्म को अपने जीवन में जीना होगा और लोक-मंगल, लोक-कल्याण, समाज-कल्याण के लिए समय और संसाधन देने होंगे। 'सतयुग की वापसी' का अर्थ है—मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण।

हमारे लिए आवश्यक है—उपासना-साधना-आराधना के द्वारा स्वयं को अनुशासित करना और ईश्वर से जुड़ना। अपने अंदर सोए देवत्व और संवेदना का जागरण करना। ज्ञानयज्ञ अर्थात स्वाध्याय के द्वारा विचारों का शोधन करना और समय और साधन को लोक-मंगल में लगाना।

युगद्रष्टा परमपूज्य गुरुदेव ने संपूर्ण विश्व को, मानव जाति को आश्वस्त किया है और स्पष्ट किया है कि महाकाल की योजना के अनुसार इस धरा पर सतयुग के आगमन को लेकर सूक्ष्मजगत् में परिवर्तन शुरू हो चुका है, जो अगले दिनों स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगेगा। अतः सतयुग की वापसी अब सन्निकट भी है और सुनिश्चित भी। इसमें राई-रत्तीभर भी संदेह नहीं होना चाहिए। □

शिष्य का कल्याण

भक्तिभाव सुनियोजन, मानव का सद्‌गतिक प्रमाण है।
सद्‌गुरु शरण शिष्य का जग में, हो जाता कल्याण है॥

सड़ी-गली भोथरी प्रथाओं, का अस्तित्व मिटाना है।
परंपरा की तुलना में, औचित्यिक क्रिया निभाना है॥
विचारक्रांति-अभियान रच रहा, मानवीय इनसान है।
सद्‌गुरु शरण शिष्य का जग में, हो जाता कल्याण है॥

कर्मभोग के कारण जग में, रहता आना-जाना है।
लख चौरासी योनि भ्रमण कर, मानव तन को पाना है॥
जन्म-जन्म प्रारब्ध कर्म के, कटते लेख विधान हैं।
सद्‌गुरु शरण शिष्य का जग में, हो जाता कल्याण है॥

पीड़ाओं के सागर में, व्याकुल हो रहा जमाना है।
गुरु-चरणों की रज-कण से, हो गया ये धन्य घराना है॥
बदल गई जीवन-धाराएँ, सौभाग्यों का गान है।
सद्‌गुरु शरण शिष्य का जग में, हो जाता कल्याण है॥

नवयुग के नवनिर्माणों में, बढ़कर हाथ बँटाना है।
मानव में देवत्व उदय और, धरती स्वर्ग बनाना है॥
गुरु संकल्पों में युग का, हो रहा नवनिर्माण है।
सद्‌गुरु शरण शिष्य का जग में, हो जाता कल्याण है॥

—शोभाराम शशांक

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड–21

अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवीय व्यक्तित्त्व

मनुष्य में अपने व्यक्तित्त्व के विकास की अपार संभावनाएँ हैं। मनुष्य, जीवन में सृजनात्मक और विधेयात्मक विचार अपनाए तो वह अपने जीवन में पर्याप्त सफलताएँ पा सकता है। इस संबंध में पठनीय हैं—

- आप ईश्वर के पुत्र हैं, यह स्वीकार कीजिए।
- आपका जीवन अत्यधिक मूल्यवान है।
- अपने जीवन को पहचानें।
- जीवन में देह नहीं, आत्मा महान है।
- विचार करना भी एक कला है।
- जीवन की संजीवनी विद्या।
- स्व-संकेतों द्वारा आत्मनिर्माण।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 /08/ 2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

26 जून, 2026 विश्व नशा निषेध दिवस के अवसर पर अखिल विश्व गायत्री परिवार के तत्वावधान में गायत्री-तीर्थ, शांतिकुंज से निकली नशामुक्ति जनजागरण रैली, विश्व नशा निषेध दिवस पर भारत सरकार के राष्ट्रीय कार्यक्रम का हुआ शुभारंभ।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281 003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565-2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल—akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org